आलाप

आचार्य श्री रामलाल जी म. सा.

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
(अंतर्गत – श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ)

आलाप

आवृत्ति : प्रथम संस्करण, नवम्बर, 2023
4000 प्रतियाँ

मूल्य : ₹ 125/-

प्रकाशक : **साधुमार्गी पब्लिकेशन**
अंतर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग
श्री जैन पी.जी. कॉलेज के सामने
नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-334401 (राज.)
☎ 0151-2270261
E-mail : sahitya@sadhumargi.com

आई.एस.बी.एन. : 978-93-91137-64-9

मुद्रक : साक्षी प्रिंटर्स, जयपुर, मो. 9829799888

बदलाव का वाहक है ये 'आलाप'

आलाप शब्द को पढ़कर या सुनकर ध्यान अनायास संगीत की तरफ जा सकता है, क्योंकि बहुधा संगीत के संबंध में ही इस शब्द का प्रयोग होता है, किंतु यह शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होने वाला है। कथनोपकथन, संभाषण और बातचीत भी इसका अर्थ होता है।

संगीत की अनुभूति के साथ ही उससे इतर वाले अर्थों को भी (कथनोपकथन, संभाषण और बातचीत) व्यक्त कर रहा है साधुमार्गी पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित यह 'आलाप।' इसमें जीवन का सुर-ताल तो है ही, कथनोपकथन भी है और 'बातचीत' भी। यह सुर-ताल, कथनोपकथन, बातचीत है आचार्य श्री रामलाल जी म. सा. की, जो किसी और के साथ नहीं हुई है। यह आचार्यश्री की खुद के साथ बातचीत है। खुद के साथ की बातचीत यानी चिंतन। चिंतन रूपी इस बातचीत को आचार्यश्री ने लिपिबद्ध किया अपनी डायरी में।

यह सामान्य व्यक्ति का कथनोपकथन नहीं है। यह सामान्य बातचीत नहीं है। यह एक संत का कथनोपकथन है। यह एक गुरु की बातचीत है। गुरु के विचार, उनके शब्द बदलाव के वाहक होते हैं। व्यक्ति के जीवन को रूपांतरित कर देते हैं। व्यक्ति फर्श से अर्श पर पर पहुँच जाता है। अधोगामी भी उपरिगामी (ऊद्‌र्ध्वगामी) हो जाता है।

वैसे तो आचार्यश्री के चिंतन पुस्तक के रूप में पूर्व में भी प्रकाशित हुए हैं किंतु उनमें और इसमें दो अंतर है। ये दोनों अंतर इसे और विशेष बनाते हैं। पहला अंतर है इसका प्रस्तुतिकरण। पूर्व पुस्तकों से अलग इसमें रेखाचित्रों और प्रतीक चित्रों का प्रयोग करके बोधगम्य बनाया गया है। इसमें रेखाचित्रों के माध्यम से भी विषय की गहराई में जाने और चिंतन के शब्दों को स्मृतिकोश में सहेजने का सुंदर अवसर है। चित्रों के विषय में यह ध्यातव्य है कि आचार्य प्रवर का प्रत्येक चिंतन हृदय की गहराइयों से उद्भूत है। प्रत्येक चिंतन न सिर्फ गंभीर

अर्थ से संपन्न है, अपितु विभिन्न उत्तम अर्थों को प्रकट करता है। उन्हीं विभिन्न अर्थों में से किसी एक अर्थ को चित्रात्मक शैली में प्रस्तुत करने का एक प्रयत्न किया गया है। पाठकों को अवगत कराना है कि चित्रयुक्त चिंतनों की यह पुस्तक '**आलाप**' के नाम से 'राम-दर्शन' ग्रंथमाला (सिरीज) की पहली कड़ी के रूप में प्रकाशित हो रही है। अभिनव नाम 'राम-दर्शन' अनेक अर्थों को समेटे हुए है। इसमें 'राम' का 'दर्शन' (फिलॉसॉफी) है तो 'राम' के जीवन-प्रतिबिंब का साक्षात् दर्शन (देखना) भी है। यही नहीं, वाचक वर्ग इन चिंतनों का पठन करने के साथ-साथ चित्रात्मक प्रस्तुति के माध्यम से चिंतनों का 'दर्शन' भी कर सकता है। दूसरा अंतर यह है कि इस सिरीज में आचार्यश्री के सभी चिंतन, तिथि के अनुसार क्रमश: लिए जाएंगे, जबकि पूर्व प्रकाशित पुस्तकों में कुछ चिंतन प्रकाशित नहीं हो सके हैं। इस सिरीज में आचार्यश्री के पहले चिंतन से शुरू होकर सभी चिंतन क्रमश: प्रकाशित होंगे।

'राम-दर्शन' के माध्यम से पाठकों के भीतर सहजता से रूपांतरण होगा। इतनी सहजता से होगा कि उन्हें यह समझ पाना कठिन होगा कि उनके भीतर कब और कैसे रूपांतरण हो गया। यह केवल कहने की बात नहीं है। स्वयं आचार्यश्री जी गुरु की वाणी की शक्ति का अनुभव करते हुए अपनी डायरी में लिखते हैं कि ''पूज्य गुरुदेव के कुछेक शब्दों की अभिव्यक्ति से ही मैं अपने आपमें बहुत रूपांतरण का अनुभव कर रहा हूँ।'' आचार्यश्री आगे लिखते हैं कि ''यह रूपांतरण इतना सहज कैसे हो गया, समझ पाना कठिन है। इसे मात्र गुरुकृपा ही कहा जा सकता है।''

आचार्य श्री रामलाल जी म. सा. पर गुरु कृपा बरसी, यकीनन आप पर भी बरसेगी। बस आपको शब्दों के मर्म पर ध्यान देना होगा। तद्रुरूप कर्म करना होगा। इसके बाद निश्चित रूप से जीवन बदलेगा। रूपांतरण होगा। कली खिलेगी। अच्छा होगा। शुभ होगा। सकारात्मक होगा। व्यक्ति आगे बढ़ेगा। शिखर पर चढ़ेगा।

संयोजक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अंतर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहोभाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छाँव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को पुस्तक '**आलाप**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अंतर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

- अर्थ सहयोगी -

गुप्त

।। सेवा है यज्ञकुण्ड, समिधा सम हम जलें।।

विषयानुक्रमणिका

1.	सफलता का मूल मंत्र	10
2.	एकै साधे सब सधै	12
3.	लक्ष्य निर्धारण की अनिवार्यता	14
4.	आशा का संचार	16
5.	गुरु बिना ज्ञान नहीं	18
6.	अनुप्रेक्षा का महत्त्व	20
7.	अपनों से वाद नहीं	22
8.	ज्ञान की सम्यक् परिणति	24
9.	प्रकाश स्तंभ	26
10.	दिल जीतने की कला	28
11.	तत्त्व निर्णायक : निर्मल व विनम्र प्रज्ञा	30
12.	आनंद तुम्हारे अंदर है	32
13.	कोयल काली क्यों ?	34
14.	प्रयत्नशील	36
15.	गंभीरता	38
16.	जिम्मेदारी का भान	40
17.	अणु की विराट यात्रा	42

18. सैद्धान्तिक दृढ़ता 44
19. आत्मप्रशंसा में आत्मस्थ 46
20. वास्तविक दान 48
21. गंभीर जीवन 50
22. कामना चक्र 52
23. समस्याओं से निखरता जीवन 54
24. गहरे पानी पैठ 56
25. अनिर्वचनीय अनुभूति 58
26. तत्त्व निर्णायिका बुद्धि 60
27. उदासीनता के दो रूप 62
28. पकड़ छोड़ें 64
29. समर्पणा का आनन्द 66
30. प्रवाहपाती मत बनो 68
31. चारों तीर्थ कर्त्तव्य में सजग हों 70
32. संगठन की जीवंतता के पाँच सूत्र 72
33. अद्वितीय शक्ति का हेतु 74
34. विश्व को महान देन देने का गुर 76
35. चाह और पात्रता 78
36. पहचानें स्वभाव को, हटायें तनाव को 80

37. किस शरीर की सुरक्षा? 82
38. सहारा बेसहारा 84
39. शरीर-यंत्र 86
40. त्रिलोकीनाथ 88
41. स्वर्ण से कुंदन 90
42. तत्काल निर्णय? 92
43. तीन बातें काम की 94
44. वंदना 96
45. महत्त्व का क्षण 98
46. वृत्तियों का तांडव नृत्य 100
47. दो बिंदु चिंतन के 102
48. आत्मज्योति प्रकट करने का उपाय 104
49. एक अवनत, दूसरा उन्नत 106
50. जहा अंतो, तहा बाहिं 108
51. स्वयं को उपशमित करें 110
52. शक्ति केन्द्रों का उपयोग 112
53. सद्गुणी जीवन की भोर 114
54. जीवन की समग्रता का ज्ञान 116
55. ऊर्जा का उपयोग 118

56. स्वभाव विभाव और चारित्र चक्र 120
57. प्रकटित ज्ञान और संगृहीत ज्ञान 122
58. एक्यूप्रेशर पद्धति के सूत्र 124
59. स्वयं की तुलना करो 126
60. तूफान के क्षण 128
61. आग में घी की आहुति 130
62. 'स्वस्थ' होना आवश्यक 132
63. बाहर की रौनक 134
64. शिष्य के दो रूप 136
65. दर्शन और व्यवहार का समन्वय 138

1 सफलता का मूल मंत्र

अच्छे कार्यों के प्रति सदा उत्साह रखना चाहिए। उत्साह के साथ-साथ विवक्षित कार्य के प्रति उतना ही समर्पित भी रहना चाहिए। जिस कार्य से सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, उस कार्य के लिए मनसा-वाचा कर्मणा सक्रिय हो जाना चाहिए।

1 जून, 1991

1 सफलता का मूल मंत्र

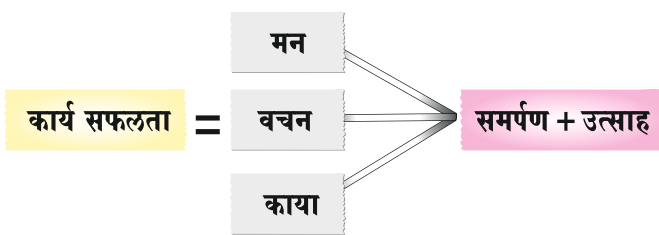

2

एकै साधे सब सधै

मानसिक क्षमता का प्रभाव शरीर तंत्र पर अवश्य पड़ता है। मन यदि एकाग्र है तो शरीर-काया से एकाग्रता सहज सिद्ध हो सकती है।

2 जून, 1991

2 एकै साधे सब सधै

3 लक्ष्य निर्धारण की अनिवार्यता

साध्य का निर्धारण साधना से पूर्व होना आवश्यक है। साध्य का निर्धारण हुए बिना साधना की भी कैसे जा सकती है। अर्थात् साध्यविहीन साधना तेली के बैल की तरह केवल भटकाव रूप ही सिद्ध हो सकती है। इसलिए साधक को साधना में गति करने के पूर्व अपना लक्ष्य अवश्य निर्धारित कर लेना चाहिए।

3 जून, 1991

3 लक्ष्य निर्धारण की अनिवार्यता

4

आशा का संचार

व्यक्ति को जीवन में कभी निराश, हताश, उदास नहीं होना चाहिए। निराशा, हताशा जीवन को तहस-नहस कर देती है। निराश व्यक्ति जीवन की ऊँचाइयाँ प्राप्त नहीं कर सकता। जीवन की समग्रता को प्राप्त करने के लिए निराशा को सदा के लिए तिलांजलि देना आवश्यक है। साथ ही जीवन में आशा का संचार होना भी अनिवार्य है।

4 जून, 1991

4 आशा का संचार

जीवन की समग्रता = आशा का संचार

~~निराशा~~

5

गुरु बिना ज्ञान नहीं

शास्त्रीय शब्दों का गुरु गम ज्ञान अत्यावश्यक है। गुरु गम ज्ञान की धारणा के प्रभाव में शास्त्रीय ज्ञान ओझल प्राय: हो जाता है। सूत्रादि के उच्चारण की विधि भी महत्त्वपूर्ण है। सही उच्चारण नहीं होने से अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है। जब केवल शब्द के उच्चारण में भी उच्चारण सम्बंधी ज्ञान की आवश्यकता है तो उन शब्दों का अर्थ-रहस्य गुरु गम के बिना यथार्थ में हो पाना असंभव प्राय: है।

5 जून, 1991

5

गुरु बिना ज्ञान नहीं

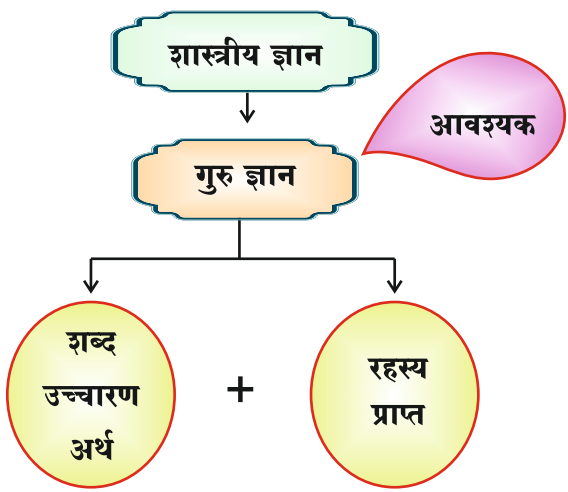

6

अनुप्रेक्षा का महत्त्व

निरंतर सजगता के अभाव में साधना फलवती नहीं होती। साधना के लक्ष्य से संप्राप्ति में निरंतर अनुप्रेक्षा की आवश्यकता है। अनुप्रेक्षा-समीक्षण की गहराई में अवगाहन करने वाला साधक सहसा साधना पथ से भटक नहीं सकता, च्युत नहीं होता। इससे साधक, मार्ग में गति करता हुआ साध्य को प्राप्त कर लेता है।

6 जून, 1991

6 अनुप्रेक्षा का महत्त्व

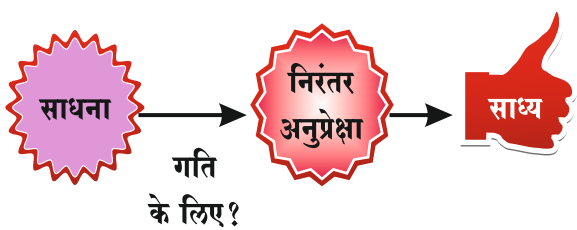

7

अपनों से वाद नहीं

पूज्य गुरुदेव का यह फरमाना शतश: सही है कि अपनों के साथ कभी शास्त्रार्थ नहीं करना चाहिए। यानी तर्क-कुतर्क में नहीं उलझना चाहिए। क्योंकि इसकी परिणति अंततोगत्वा आत्मीय भावों में कटुता पैदा करने वाली प्राय: हुआ करती है।

शास्त्रार्थ में विजिगीषु भावना जागृत होती है, जो प्रतिष्ठा का रूप धारण कर लेती है। जिससे तत्त्वा-तत्त्व, सत्या-सत्य की जिज्ञासा भावना तिरोहित हो जाती है, बल्कि उसे दबोच दिया जाता है और अहंकार खुलकर सामने आ जाता है। अत: निर्णायक के अभाव में शास्त्रार्थ नहीं करना चाहिए।

7 जून, 1991

7

अपनों से वाद नहीं

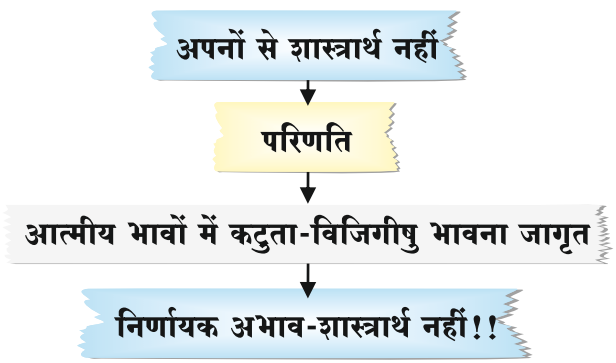
अपनों से शास्त्रार्थ नहीं
परिणति
आत्मीय भावों में कटुता-विजिगीषु भावना जागृत
निर्णायक अभाव-शास्त्रार्थ नहीं!!

8

ज्ञान की सम्यक् परिणति

ज्ञान की प्राप्ति क्षयोपशम जन्य है, किंतु प्राप्त ज्ञान को जो फल मिलना चाहिए वह मिल पाया या नहीं, यह देखना आवश्यक है। ज्ञान प्राप्ति अहं का कारण भी बन जाया करती है। आठ मद स्थान में सूत्र मद भी ग्रहीत है। अत: ज्ञानवान पुरुषों को प्राप्त ज्ञान के प्रति सतत जागरूक रहना चाहिए कि वह सुफलदायी सिद्ध हो। उससे अहंकार, ममकार की भावना गलित हो न कि पैदा। इस प्रकार का जागरण जिसमें है, वस्तुत: उसी ने ज्ञान को प्राप्त करके सफलता हासिल की है, यह मानना चाहिए।

10 जून, 1991

8 ज्ञान की सम्यक् परिणति

9

प्रकाश स्तंभ

गुरु की उपेक्षा वृत्ति भी साधक (शिष्य) के लिए प्रकाश स्तम्भ है, किंतु उस प्रकाश स्तम्भ का प्रकाश वही शिष्य प्राप्त कर सकता है जो जागरूक है। जिसमें ये पात्रता आ गयी हो। पात्रता के अभाव में उस प्रकाश स्तम्भ से प्रकाश के बजाय अंधकार ही ग्रहण कर सकता है। अत: गुरु की उपेक्षा वृत्ति के समय शिष्य को बहुत सावधानी रखना आवश्यक है। यदि महत्त्वपूर्ण उस क्षण को चूक गया तो जो लाभ उसे प्राप्त होने वाला था, उससे वह सदा के लिए वंचित रह सकता है।

11 जून, 1991

प्रकाश स्तंभ

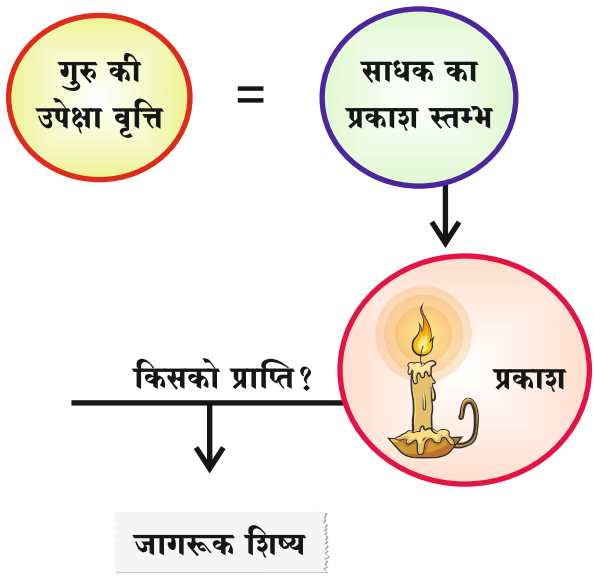

10

दिल जीतने की कला

आध्यात्मिक क्षेत्र के अनुशास्ता को मृदु स्वभावी होना चाहिए। अधिकार प्रयोग से दूसरे को दबाया जा सकता है, किंतु दिल से जीता नहीं जा सकता। जनता दिल से जिसका अनुशासन स्वीकार करे, वही अनुशास्ता की सफलता का प्रतीक है। जनता दिल से उसी का अनुशासन स्वीकार करती है, जो माधुर्य से जन-जन के हृदय को आप्लावित कर देता है।

12 जून, 1991

10 दिल जीतने की कला

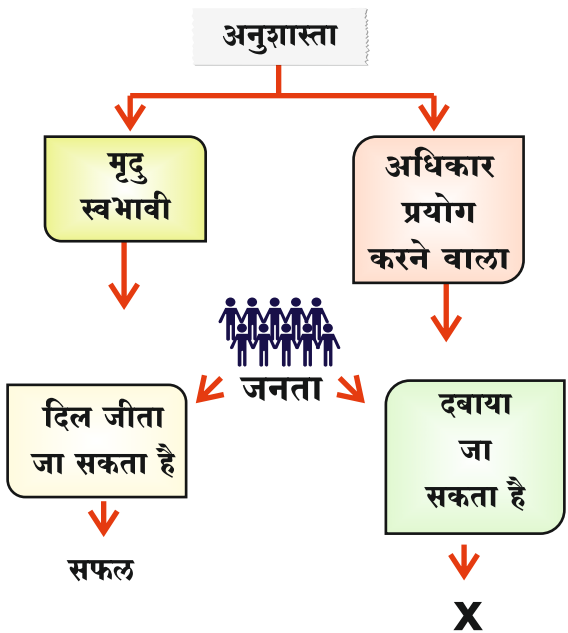

11 तत्त्व निर्णायक : निर्मल व विनम्र प्रज्ञा

शास्त्रार्थ के लिए कई अंग आवश्यक माने गये हैं। वादी-प्रतिवादी, सभ्य-सभापति आदि। इनके बिना शास्त्रार्थ विधिपूर्वक सम्पन्न नहीं हो सकता। शास्त्रार्थ में जिज्ञासा भावना की प्राय: न्यूनता देखी गयी है। इसलिए उपर्युक्त अंगों के अभाव में किया गया शास्त्रार्थ बकवास या वितंडावाद हुआ करता है। उसमें तत्त्व निर्णय का प्राय: अभाव ही हुआ करता है। तत्त्व निर्णय के लिए बुद्धि प्रज्ञा का निर्मल व विनम्र होना आवश्यक है।

13 जून, 1991

11 तत्त्व निर्णायक : निर्मल व विनम्र प्रज्ञा

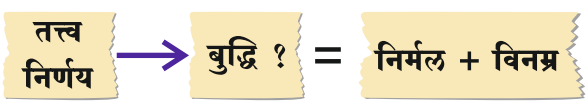

12

आनंद तुम्हारे अंदर है

आनंद को कहीं बाहर मत ढूँढो अथवा किसी पदार्थ विशेष के आश्रित मत समझो। वह तो आत्मा का ही गुण है, जो आत्मा में विद्यमान रहता है। विषय वासना की बेहोशी में हमने उसे भुला रखा है। विषय वासना का नशा जैसे ही हलका होता है या समाप्त हो जाता है वैसे ही आनंद का उद्‌भव होने लगता है अथवा आनंदमय बन जाता है। अत: आनंद की प्राप्ति के लिए वैकारिक भावनाओं को दूर करें, आनंद स्वत: प्रकट होगा।

14 जून, 1991

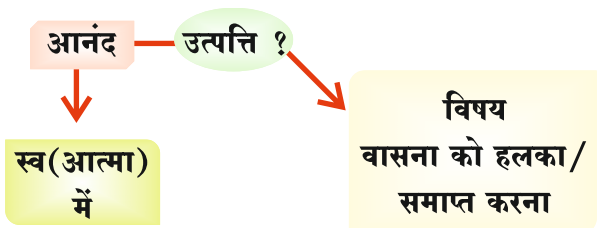
आनंद
उत्पत्ति ?
स्व(आत्मा) में
विषय वासना को हलका/ समाप्त करना

13

कोयल काली क्यों?

कोयल मधुर बोलती है या यों कहें कि उसकी बोली में माधुर्य होता है, किंतु चिंतन उभरता है कि बोली में इतना माधुर्य होने पर भी उसका वर्ण कृष्ण क्यों है! क्या इसके पीछे कोई रहस्य रहा हुआ है! वस्तुत: कोयल के कृष्ण वर्ण के पीछे उसके मनोवृत्ति की अवस्था रही हुई है। वह बोलती मीठी है, किंतु उसकी स्वार्थ भावना इतनी तीव्र है कि वह स्वयं के अंडों की रक्षा के लिए दूसरे के अंडों को नुकसान पहुँचाती है। उन्हें समाप्त कर देती है। उन अंडों के स्थान पर अपने अंडे रख देती है, जिन्हें कोई अपने अंडे समझ कर सेती है। कोयल की मलिन भावना के प्रतीक स्वरूप ही मानो उसका कृष्ण वर्ण है।

4 जुलाई, 1991

13

कोयल काली क्यों?

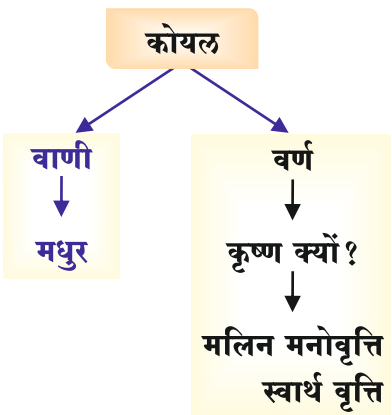

14

प्रयत्नशील

जो वातावरण निर्मित हो रहा है, उस संबंध में रात्रि की नीरवता में चिंतन चला। उस चिंतन में मैंने पाया कि मेरी आत्मा आंशिक रूप से उसके लिए तैयार नहीं है, बल्कि एक प्रकार से भयावह स्थिति के दर्शन करता हूँ अथवा स्वयं को कुण्ठाग्रस्त स्थिति में पाता हूँ।

एक सफल अनुशास्ता में जो गुण या क्षमता होनी चाहिए, उसका मैं स्वयं में सद्भाव नहीं मानता, बल्कि बहुत भारीपन सा महसूस होता है। इस स्थिति से कैसे उपरत होऊं, इसके लिए प्रयत्नशील हूँ।

8 जुलाई, 1991

प्रयत्नशील

15

गंभीरता

किसी भी सदस्य की न्यूनता संबंधी बात हो तो उसको स्वगत रखना चाहिए, उसका दिग्दर्शन अन्य किसी के समक्ष नहीं करना चाहिए।

कोई अपनी आंतरिक स्थिति अपने सामने रखे तो उसकी भनक भी दूसरों को नहीं पड़ने देनी चाहिए। यदि उस गोपनीय बात का प्रगटीकरण हो जाता है तो एक प्रकार से कथन करने वाले के विश्वासघात जैसा प्रसंग बनता है।

19 अगस्त, 1991

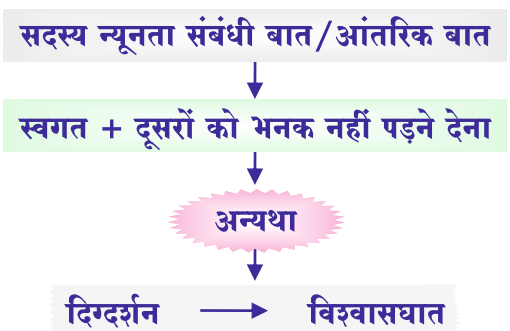
सदस्य न्यूनता संबंधी बात/आंतरिक बात
स्वगत + दूसरों को भनक नहीं पड़ने देना
अन्यथा
दिग्दर्शन
विश्वासघात

16

जिम्मेदारी का भान

किसी भी जिम्मेदारी को ग्रहण करना जितना सरल है, उसका निर्वहन करना उतना ही कठिन है। यह तथ्य तब ज्ञात होता है, जब जिम्मेदारी व्यक्ति के सिर पर आती है।

आचार्यदेव ने जो महत्ता प्रदान की है, वह उनका बड़प्पन है। उन्होंने मुझे जिस रूप में भी समझा है, सही समझा होगा। उन्होंने जो कुछ भी निर्णय लिया है, सोच-समझकर ही लिया होगा, किंतु मैं अभी तक अपने सामर्थ्य से आश्वस्त नहीं हूँ।

20 अगस्त, 1991

16

जिम्मेदारी का भान

17

अणु की विराट यात्रा

विराट बनने के लिए अणु बनना अत्यावश्यक है। बिना लघु बने गुरु नहीं बना जा सकता। यह अनुभवगम्य स्थिति है।

गुरु की वाचा कितनी सशक्त होती है, इसका मैं स्वयं अनुभव कर रहा हूँ। पूज्य गुरुदेव के कुछेक शब्दों की अभिव्यक्ति से ही मैं अपने आप में बहुत रूपान्तरण का अनुभव कर रहा हूँ। यह रूपान्तरण इतना सहज कैसे हो गया, समझ पाना कठिन है। इसे मात्र गुरुकृपा ही कहा जा सकता है।

21 अगस्त, 1991

17 अणु की विराट यात्रा

जितना लघु ↓ उतना गुरु ↑

18

सैद्धान्तिक दृढ़ता

व्यक्ति को व्यवहारिक होना चाहिए, किंतु सैद्धान्तिक मर्यादाओं की सुरक्षा पूर्वक। यदि सिद्धान्त के धरातल से हट कर व्यवहारिक बना जाता है तो वह केवल मुद्दे की राजनीति के सदृश होगा। ऐसे व्यक्तियों का कोई सिद्धान्त नहीं हो सकता। उन्हें अवसरवादी कहा जा सकता है। ऐसे व्यक्ति जिधर की हवा चलती देखेंगे, उधर ही लुढ़क जायेंगे। अत: ऐसे व्यक्तियों पर किया गया विश्वास खतरे से खाली नहीं होता।

22 अगस्त, 1991

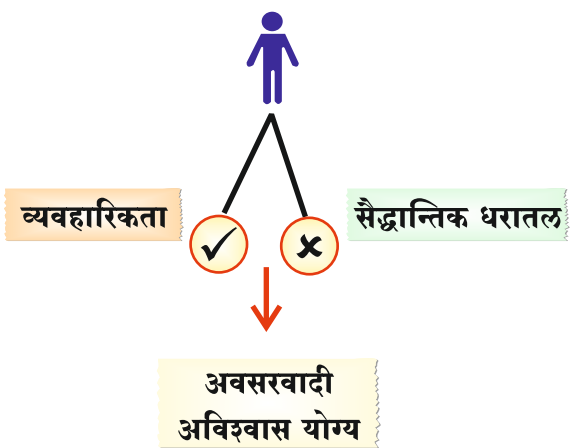
व्यवहारिकता
सैद्धान्तिक धरातल
अवसरवादी
अविश्वास योग्य

19

आत्मप्रशंसा में आत्मस्थ

आत्म प्रशंसा अच्छी लगती है। विरले व्यक्ति ही आत्म प्रशंसा के समय अपने को आत्मस्थ रख पाते हैं। आत्म प्रशंसा के समय ऐसे व्यक्ति उस प्रशंसा के साथ अपनी तुलना करते हैं कि वस्तुत: जो विरदावली गायी जा रही है, उसके अनुरूप मैं हूँ भी या नहीं।

आत्म प्रशंसा के समय जो व्यक्ति आत्मस्थ रह जाता है, वह वस्तुत: महान पुरुष है।

23 अगस्त, 1991

आत्मप्रशंसा में आत्मस्थ

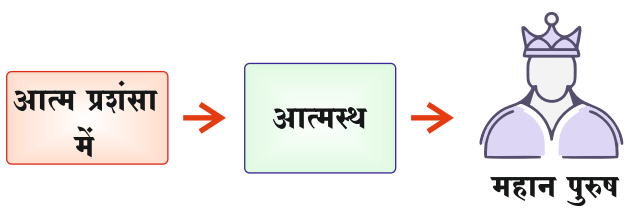

20

वास्तविक दान

दान के नाम पर ठगी व व्यापार बहुत चल पड़ा है। दान का तात्पर्य है पदार्थ पर से ममत्व भाव त्यागकर उत्सर्ग करना, किंतु आज प्राय: करके उत्सर्ग तो कर दिया जाता है, उस पर की ममता हटती नहीं, बल्कि वह दूसरा रूप धारण करके नाम-यश की कामना रूप में अधिक होती है।

धर्मार्थ ट्रस्ट को दान देकर भी व्यक्ति अपने नाम की आकांक्षा करता है। यह दान के नाम पर ठगी के तुल्य है। दानदाताओं को नि:स्वार्थ भाव से अपने द्रव्य का ममत्व त्याग करना चाहिए।

26 अगस्त, 1991

20

वास्तविक दान

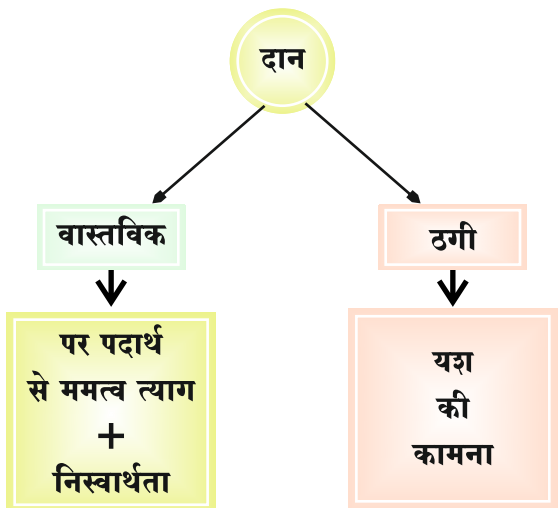

21

गंभीर जीवन

नदी के नहीं चाहते हुए भी उसमें तूफानी ऊफान आ जाता है, किंतु जो नदी गंभीर होती है, गहरी होती है, वह प्रलय का रूप धारण नहीं करती। वह उस तूफान को अपने भीतर समाहित कर लेती है। इसी तरह जीवन के रहस्य को जानने वाला अपने आवेगों को, तूफानों को बाहर झलकने नहीं देता और न बाह्य क्षेत्र में प्रलय ही मचाता है। अपने अंतर् में ही वह उन आवेगों/तूफानों को समाहित कर स्वयं शांत भाव का अवलम्बन लेता है।

27 अगस्त, 1991

गंभीर जीवन

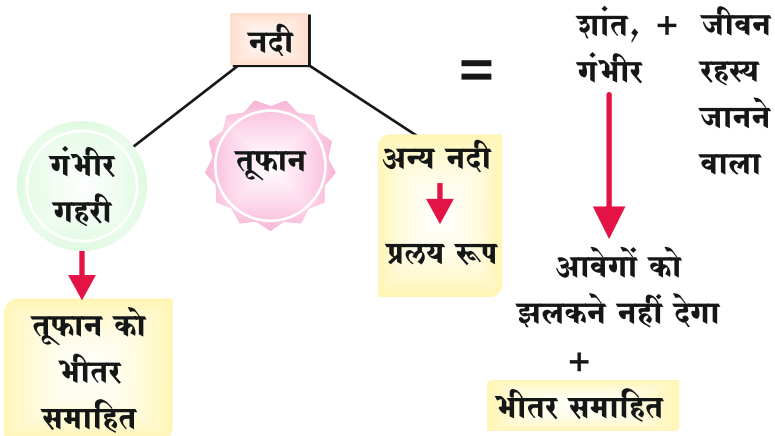
नदी
=
शांत, + जीवन
गंभीर रहस्य
जानने
वाला
गंभीर
गहरी
तूफान
अन्य नदी
प्रलय रूप
तूफान को
भीतर
समाहित
आवेगों को
झलकने नहीं देगा
+
भीतर समाहित

22

कामना चक्र

स्वभाव से ही मानव अनेक कामनाएँ करता रहता है। कामनाएँ पूर्ण होने पर उसे संतुष्टि हो जाये, यह बात नहीं है। कामनाएँ पुन:-पुन: जागृत होती रहती हैं। जो कामनाएं तीव्र इच्छा शक्ति से जागृत होती हैं, उनकी यदि कदाचित पूर्ति नहीं होती है तो उस समय मानव के मानस्तंभ का असंतुलित हो जाना अधिकतर संभावित है। बहुत कम व्यक्ति उस परिस्थिति में अपने आपको संभाल पाते हैं। कामनाओं से प्रताड़ित मानस क्या कुछ कर सकता है, इसका अनुमान भी लगा पाना कठिन हो जाता है।

28 अगस्त, 1991

कामना चक्र

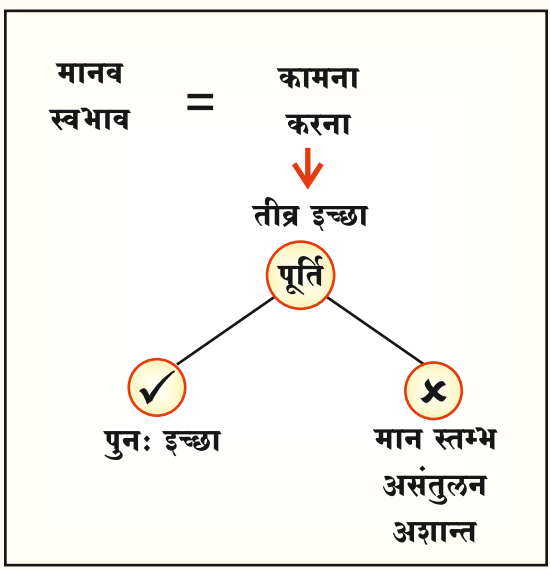

23 समस्याओं से निखरता जीवन

समस्याओं से घबराना व्यक्ति की कमजोरी-कायरता का द्योतक है। समस्याओं से जूझना जीवंत जीवन का सूचक है। समस्याएं-आपदाएं जो आती हैं, वे नया ज्ञान देने के लिए आती हैं। ऐसा मानकर मानव को धैर्यपूर्वक समस्याओं का सार निकाल कर उन्हें निस्सार कर देना चाहिए।

जिस मानव के जीवन में समस्याओं का, आपदाओं का तूफान नहीं आता, वह उनसे प्राप्त होने वाली शिक्षा, अनुभव से प्राय: वंचित रह जाता है। अत: समस्या को भी जीवन का एक अंग मानना चाहिए।

29 अगस्त, 1991

23 समस्याओं से निखरता जीवन

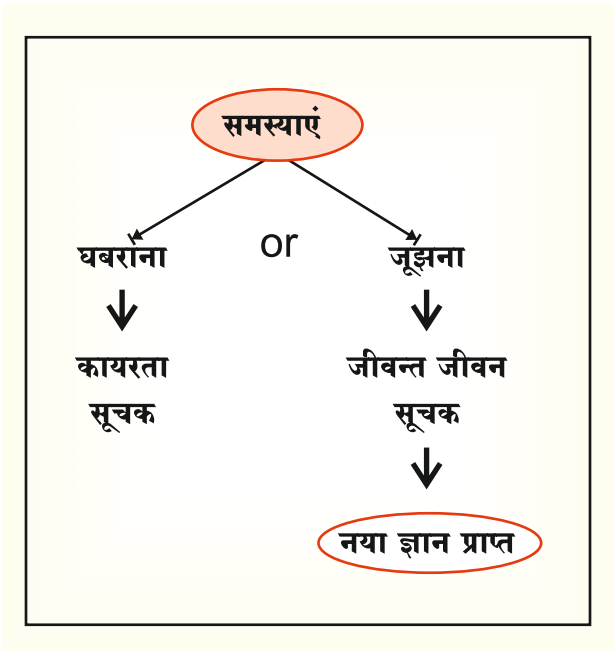

24

गहरे पानी पैठ

आज शाम को मन काफी गहराइयों में कुछ खोज कर रहा था। ऊपर के, बाह्य वातावरण का उस पर असर नहीं हो पा रहा था। प्रतिक्रमण में भी मन कहीं गहराई में था। इसका कारण कुछ शासन की व्यवस्थाएँ थी तो कुछ प्रश्नों के उत्तर के संबंध में अनुसंधान चल रहा था। ज्यों-ज्यों सोच रहा था, त्यों-त्यों उसमें डूबता जा रहा था। अजमेर, देशनोक, बीकानेर के संदर्भ में आगत समाचार भी चिंतन का कारण है।

25 अक्टूबर, 1991

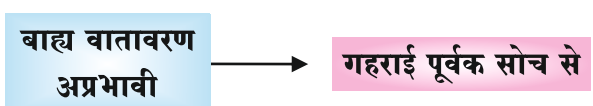
बाह्य वातावरण
अप्रभावी
गहराई पूर्वक सोच से

25

अनिर्वचनीय अनुभूति

रात्रि को लगभग 2.30 बजे निद्रा भंग हो गयी। वैसे तो अन्य दिनों भी 2.30 या 3 बजे निद्रा खुल जाती है, किंतु आज पुन: शयन की इच्छा नहीं हुई। कुछ व्यायाम करके स्वाध्याय व नित्य नियम कर शवासन के समय आनन्द केन्द्र में स्थित रहा, उस समय अनिर्वचनीय अनुभूति हुई। मैं स्वयं में बहुत हलकापन अनुभव करने लगा। साथ ही स्वयं को भूमि से काफी ऊपर उठा हुआ अनुभव किया। शरीर पर पहने हुए कपड़ों का भी आभास नहीं था। ऐसी अवस्था पहले भी कई बार अनुभव कर चुका हूँ, किंतु आज पन्नों पर अंकित कर दी।

27 अक्टूबर, 1991

अनिर्वचनीय अनुभूति

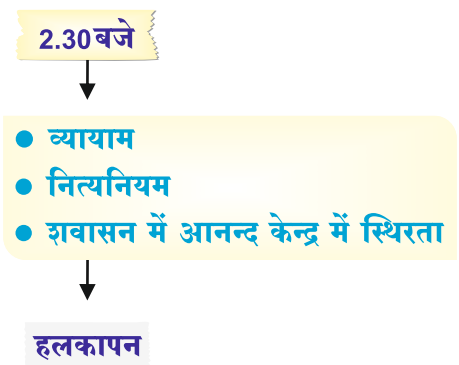

26 तत्त्व निर्णायिका बुद्धि

तत्त्व निर्णय में केवल तार्किक बुद्धि समर्थ नहीं है। बुद्धि की तर्क शक्ति से तत्त्व का खंड-खंड तो किया जा सकता है, किंतु यथार्थ निर्णय नहीं। यदि उस बुद्धि को श्रद्धा व समर्पणा का संयोग प्राप्त हो जाए तो वह चमत्कारिक रूप से अपना फल प्रदान करती है। जैसे- कैंची कपड़े को खंड-खंड कर सकती है, किंतु पहनने योग्य वस्त्र निर्माण उसके वश में नहीं है। यदि उसके साथ सुई का संयोग प्राप्त हो जाता है तो खंड-खंड हो चुका वस्त्र भी परिधान का रूप प्राप्त कर उपयोगी बन जाता है। ठीक उसी तरह श्रद्धा व समर्पणा से संयुक्त बुद्धि तत्त्व-निर्णय में उपयोगी होती है।

22 अप्रैल, 1992 (भीनासर)

26 तत्त्व निर्णायिका बुद्धि

तत्त्व निर्णय = तार्किक बुद्धि + श्रद्धा समर्पण

27

उदासीनता के दो रूप

उदासीनता का अर्थ कभी-कभी निराशा मान लिया जाता है, किंतु उदासीनता एकान्तत: निराशा का स्वरूप नहीं है। जीवन में उदासीनता घातक है तो साधक भी है। एक उदासीनता जीवन का ह्रास कर देती है, उसे नीरस बना देती है, किंतु दूसरे प्रकार की उदासीनता जीवन उन्नायक होती है और जीवन में रस भरने वाली होती है।

पहली प्रकार की उदासीनता में निराशा की छाया होती है। उससे जीवन मुरझा जाता है। दूसरी प्रकार की उदासीनता आध्यात्मिक पुरुषों की भौतिक पदार्थों के प्रति होती है, जो जीवन का सार प्राप्त कराने वाली होती है।

23 अप्रैल, 1992 (भीनासर)

उदासीनता के दो रूप

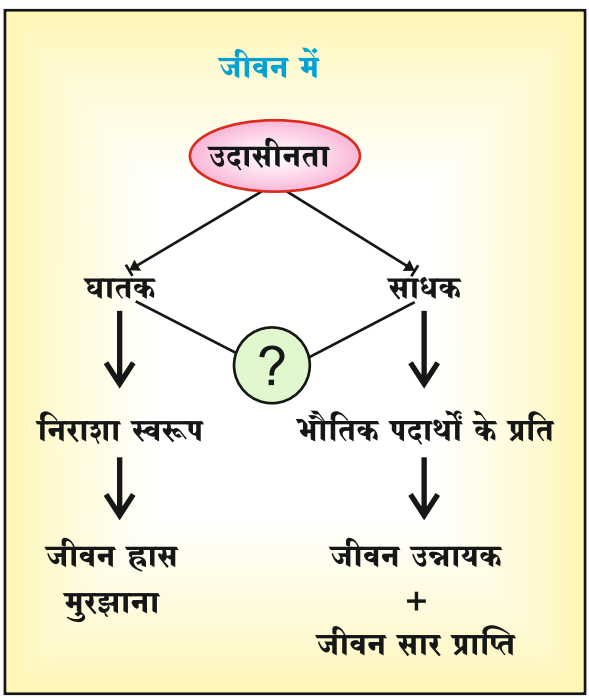
जीवन में
उदासीनता
घातक
साधक
?
निराशा स्वरूप
भौतिक पदार्थों के प्रति
जीवन ह्रास
मुरझाना
जीवन उन्नायक
+
जीवन सार प्राप्ति

28

पकड़ छोड़ें

जीवन को परिवर्तित करने के लिए 'पकड़' को छोड़ना आवश्यक होता है। व्यक्ति अपनी पकड़ को इतनी गहरी कर लेता है कि वह ग्रंथि का रूप ग्रहण कर लेती है। ग्रंथि का तात्पर्य है- उन संस्कारों का स्थायी भाव, जिससे व्यक्ति स्वयं व्यथित होता है और अन्यों को भी व्यथित करता है। वह स्वयं से असंतुष्ट रहने लगता है। वह स्वयं में रिक्तता का अनुभव करता रहता है। वह हताशा, निराशा के झूले में झूलता रहता है। अत: स्वयं को रूपान्तरित करने के इच्छुक मुमुक्षुओं को चाहिए कि काम, क्रोध, अहंकार आदि से जन्मी पकड़ को स्वयं में स्थायी न रहने दें। इसके लिए तामसिक वृत्तियों का विसर्जन करते हुए स्वच्छ विचारों से स्वयं को भावित करना चाहिए।

26 अप्रैल, 1992 (पलाना)

पकड़ छोड़ें

जीवन परिवर्तन =

पकड़

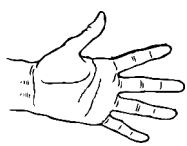

छोड़ो

29

समर्पणा का आनन्द

समर्पणा दुरूह है। ज्ञानीजनों का कथन है कि श्वासोच्छवास व नेत्र की पलक झपकाना शिष्य के स्वाधीन है, अन्य समग्र क्रियाएँ गुरु आज्ञा/निर्देश पर निर्धारित हैं। ऐसी समर्पण भावना विरल ही प्राप्त हो सकती है। समर्पणा की अभिव्यक्ति करना एक बात है। आज कल अधिकांशत: ऐसी ही स्थिति दृष्टिगत होती है, किंतु वास्तविक समर्पणा 'तुझमें मुझमें भेद न पाऊँ' रूप होती है। उसका आनन्द और स्वरूप कुछ अलग ही होता है।

27 अप्रैल, 1992 (देशनोक)

समर्पणा का आनन्द

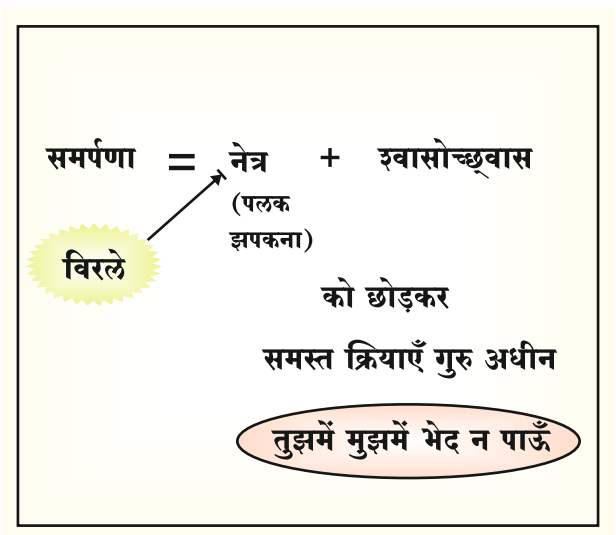
समर्पणा = नेत्र + श्वासोच्छ्वास
(पलक झपकना)
विरले
को छोड़कर
समस्त क्रियाएँ गुरु अधीन
तुझमें मुझमें भेद न पाऊँ

30

प्रवाहपाती मत बनो

व्यक्ति के सोचने का तरीका अलग-अलग होता है। अत: किसी की सोच से दूसरे को व्यथित या हर्षित नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे अपनी तटस्थ प्रज्ञा का सदुपयोग करना चाहिए। ऐसे प्रसंग में स्वयं की आत्मा जो साक्षी दे तथा उसमें जो संकल्प जागृत हो, उसी के अनुसार उसे अपना व्यवहार बनाना चाहिए। दूसरे के प्रवाह में नहीं बहना चाहिए।

जो करना है उस पर केवल कल्पना के घोड़े नहीं दौड़ाकर उसे करने का संकल्प जागृत करना चाहिए।

28 अप्रैल, 1992 (देशनोक)

प्रवाहपाती मत बनो

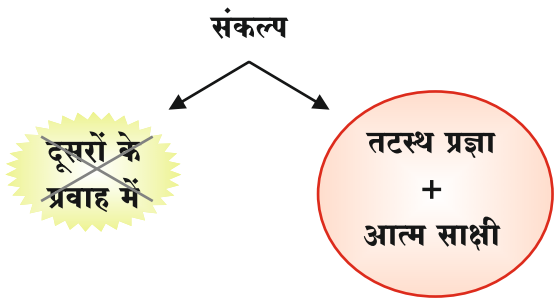

31 चारों तीर्थ कर्तव्य में सजग हों

चतुर्विध संघ साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप है। चतुर्विध संघ की सुदृढ़ता के लिए उक्त चारों समूहों का स्वस्थ होना आवश्यक है। यह स्वस्थता मात्र शरीर से अपेक्षित नहीं है, अपितु सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में मर्यादा की परिपालना पूर्वक कार्यक्षमता से सम्बन्धित है।

साधु-साध्वी अपनी मर्यादा में रहते हुए कर्तव्य पालन में दृढ़ हैं, किंतु श्रावक-श्राविका उक्त मर्यादा में अनुत्साहित हों तो संघ गरिमापूर्ण स्थिति से आगे नहीं बढ़ सकता। संघ की महत्ता व गरिमा तभी कायम रह सकती है, जब चारों तीर्थ अपने कर्तव्य के प्रति पूर्ण सजग व तत्पर हों।

30 अप्रैल, 1992 (देशनोक)

31 चारों तीर्थ कर्तव्य में सजग हों

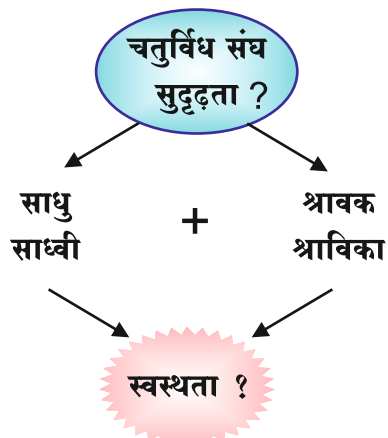

सैद्धान्तिक मर्यादा की परिपालना

32 संगठन की जीवंतता के पाँच सूत्र

जैसे मकान की छत को व्यवस्थित टिकाए रखने के लिए स्तम्भों की आवश्यकता होती है, उसी तरह किसी भी संगठन को जीवंत रखने के लिए पाँच सूत्री स्तम्भ अत्यावश्यक हैं। वे पाँच सूत्र हैं -

1. अनुशासन
2. स्व-संवेदनात्मक व्यवहार
3. गुणपरक समन्वय
4. सर्जनात्मक चिंतन
5. अप्रतिक्रिया

इन पाँच सूत्रों की परिपालना से संगठन में एक शक्ति का संचार होता है, जिससे वह क्रान्तिकारी कार्य करने में सक्षम हो सकता है।

1 मई, 1992 (देशनोक)

32 संगठन की जीवंतता के पाँच सूत्र

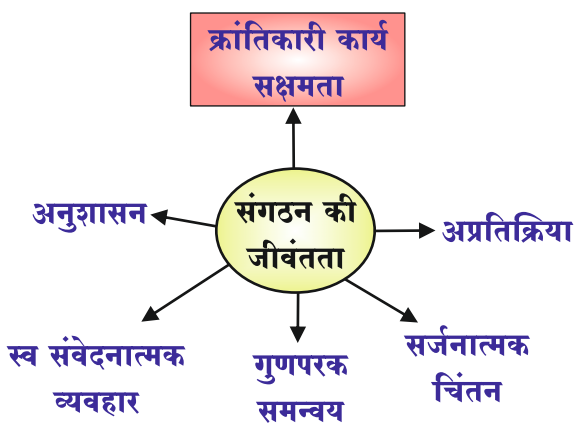

33

अद्वितीय शक्ति का हेतु

मनुष्य की बहुत सी ऊर्जा/शक्ति अनावश्यक वचन प्रयोग के माध्यम से क्षीण हो जाती है। उस शक्ति को संग्रहित करने के लिए मौन सरल व अमोघ है। आत्मोप्लब्धि में भी मौन एक महत्त्वपूर्ण अंग है। मौन का समय निर्धारित कर वह समय यदि आत्म-चिंतन में लगाया जाय तो उससे साधक की शक्ति का रूप अद्वितीय हो सकता है। तीर्थंकर भगवंत इसी मौन का आश्रय लेते हैं, जिससे अपनी अनंत शक्तियों का जागरण कर लेते हैं। नीतिकारों ने भी मौन के संदर्भ में कहा है -

मौनं सर्वार्थसाधनम्

2 मई, 1992 (देशनोक)

33 अद्वितीय शक्ति का हेतु

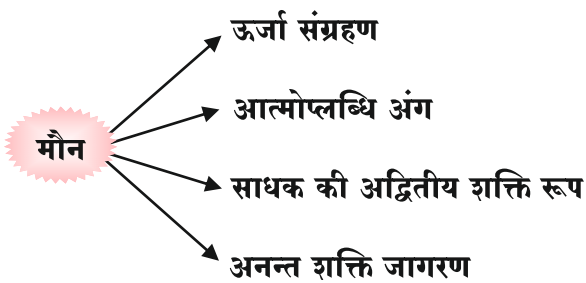

34 विश्व को महान देन देने का गुर

मनुष्य जितना सोचता है, उतना यदि आचरण करने लग जाए तो वह विश्व को महान देन दे सकता है। दुविधा यह है कि मानव कल्पना के घोड़े तो बहुत दौड़ाता है, पर क्रियान्विति उसके चतुर्थांश में भी नहीं कर पाता। वह दु:ख एवं द्वन्द्व में झूलता रहता है, क्योंकि उसकी मनोकामनाएँ पूर्ण नहीं होती। अत: उचित यह है कि एक विषय पर सोचकर उसकी क्रियान्विति किया जाए। एक क्रियान्विति के पश्चात् दूसरे विषय को सोचा जाय और उसकी क्रियान्विति के पश्चात् तीसरे विषय को। इस तरह मानव करने लग जाए तो वह हताशा, निराशा या असंतोष का शिकार नहीं बन सकता, बल्कि कार्य करने की क्षमता जागृत होगी व नए-नए कार्य संपादित कर दुनिया को अपनी सर्जना से चमत्कृत कर सकता है।

2 मई, 1992 (देशनोक)

34 विश्व को महान देन देने का गुर

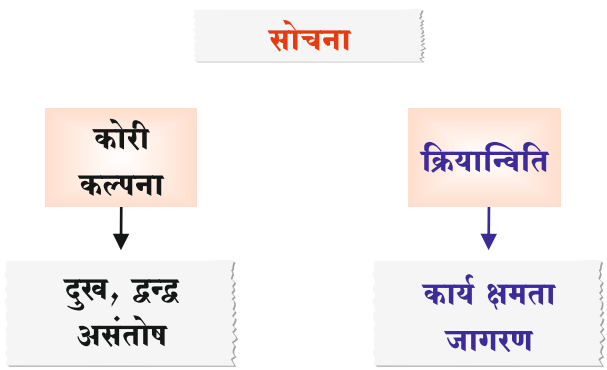

35

चाह और पात्रता

समान्यतया व्यक्तियों की यह चाह होती है कि उनकी प्रशंसा हो, किंतु जब चाह के अनुरूप उन्हें प्रशंसा श्रुति-गोचर नहीं होती तो उनके मन में निराशा, कुंठा या डाह के भाव पैदा होने लगते हैं। यह अवस्था लम्बे समय तक चलती रहे तो ये ही विचार ग्रंथियों का रूप धारण कर लेते हैं।

अत: क्या ही अच्छा हो कि व्यक्ति प्रशंसा चाहने के बजाय प्रशंसा पाने योग्य पात्रता स्वयं में प्राप्त कर ले।

3 मई, 1992 (देशनोक)

चाह और पात्रता

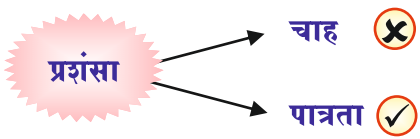

36

पहचानें स्वभाव को, हटाएँ तनाव को

प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव को जानकर सैद्धान्तिक धरातल को सुरक्षित रखते हुए यथा योग्य व्यवहार से तनाव, संघर्ष, विग्रह आदि से बचा जा सकता है।

4 मई, 1992 (देशनोक)

36

पहचानें स्वभाव को,
हटाएँ तनाव को

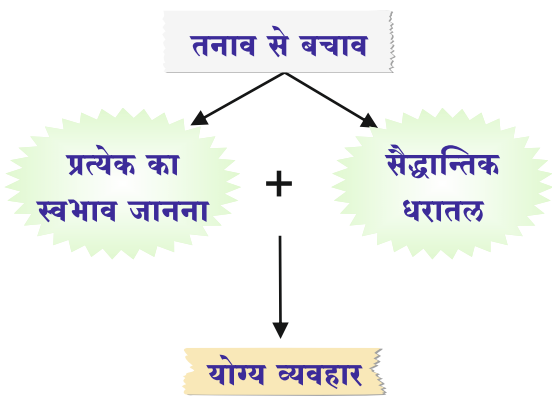

37

किस शरीर की सुरक्षा?

हाड़-मांस से बना हुआ यह शरीर ही अब मेरा शरीर नहीं है, बल्कि अब साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ ही मेरा शरीर है। हाड़-मांस के शरीर के बजाय उसकी सुरक्षा का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। चतुर्विध संघ रूपी शरीर में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की अभिवृद्धि कैसे हो, इसके लिए सतत जागरूकता की अपेक्षा है।

चतुर्विध संघ रूपी शरीर की स्वस्थता परम आवश्यक है। यह स्वस्थता अप्रमत्त भाव की आराधना, सतत वैराग्य भाव की साधना से संभव है।

6 मई, 1992 (देशनोक)

37 किस शरीर की सुरक्षा?

चतुर्विध संघ रूपी
शरीर की सुरक्षा

↓

अप्रमतत्ता + वैराग्य भाव साधना

38

सहारा बेसहारा

व्यक्ति के अहंकार को यदि सहारा मिल जाता है, पोषण मिल जाता है तो वह खुश रहता है। जो उसके अहंकार को सहारा देता है, उसको वह भी सहारा देने लगता है। उस समय उसकी दृष्टि पूर्णतया निष्पक्ष हो यह कह पाना कठिन होगा। अधिकांशत: देखा यह जाता है कि ऐसे समय में व्यक्ति का नजरिया बदला हुआ रहता है। उस बदले हुए नजरिये से किया गया कथन भी अपने ढंग का होता है। ऐसे व्यक्ति के अहंकार पर जब चोट पड़ती है, तो उसे वह सहन नहीं कर पाता। चाहे वह चोट सत्य ही क्यों न हो। इससे उसके मन-मस्तिष्क में उद्वेग, तनाव आदि का प्रसंग बन जाया करता है। अत: ऐसे समय में यथार्थ को सम्मुख रखकर चिंतन किया जाय तो वह समझ पायेगा कि जो सहारा देने वाला है, वह स्वयं बेसहारा है। इसलिए ऐसा सहारा मुझे भी बेसहारा बनाने वाला होगा।

9 मई, 1992 (पलाना)

सहारा बेसहारा

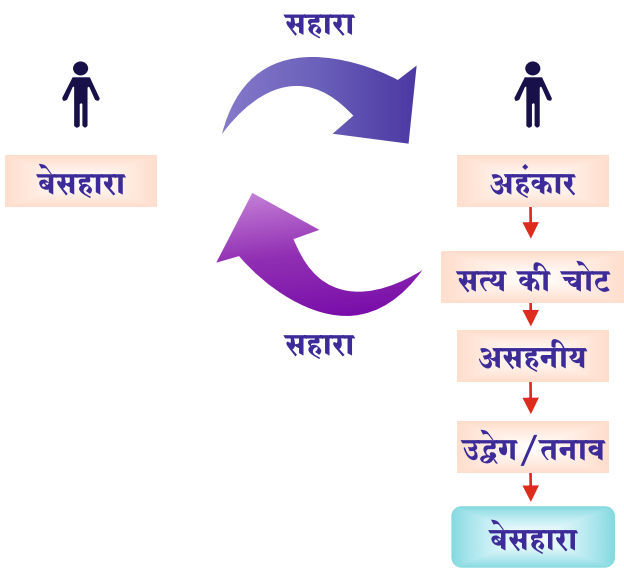

39

शरीर-यंत्र

वर्तमान मशीनी युग में व्यक्ति ने भौतिक सम्पदा से स्वयं को काफी विकसित किया है। किस यंत्र की कितनी गति है, कितनी शक्ति है, कितनी क्षमता है, इसका ज्ञान मनुष्य कर लेता है, किंतु स्वयं के शरीर के अंदर चल रहे यंत्र से वह प्राय: अनभिज्ञ है। वह इस यंत्र से बेखबर है। इस दिशा में सोचने की भी फुरसत नहीं है। शरीर के अंदर रहे हुए यंत्र की पहचान की जाय, उसका परिचय पाया जाय। उसकी गति, शक्ति व क्षमता का ज्ञान किया जाय। जब शरीरगत मशीन की गति आदि का ज्ञान हो जाएगा तो व्यक्ति को आश्चर्य होगा कि भौतिक यंत्रों में वह शक्ति, क्षमता नहीं है, जो शक्ति, जो क्षमता शरीर के अंदर रही मशीन में है।

शरीरगत मशीन की अन्यान्य शक्तियों को एक बार के लिए गौण करके एक मन की शक्ति को ही लें। उसकी शक्ति, उसकी क्षमता का ज्ञान बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि भी कई बार नहीं कर पाते हैं। वे जंगलों में भटकते हैं, गुफाओं में रहते हैं, फिर भी मन की शक्ति को जान पाने में सभी समर्थ नहीं हो पाते। इसी तरह इस शरीरगत मशीन में अनेक शक्तियाँ विद्यमान हैं। आवश्यकता है उनको जानने की, पहचानने की, प्रकट करने की।

10 मई, 1992 (भीनासर)

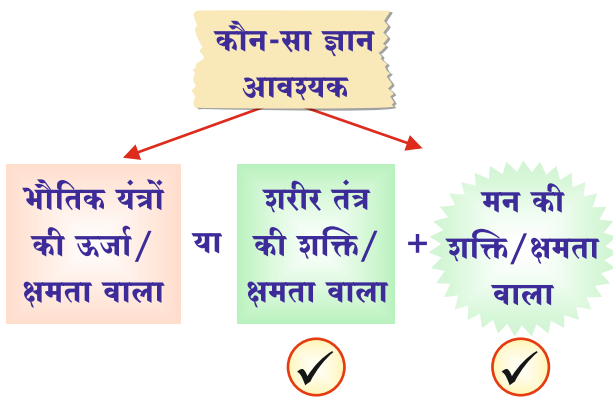
कौन-सा ज्ञान आवश्यक
भौतिक यंत्रों की ऊर्जा/ क्षमता वाला
या
शरीर तंत्र की शक्ति/ क्षमता वाला
+
मन की शक्ति/क्षमता वाला

40

त्रिलोकीनाथ

परमात्मा को त्रिलोकीनाथ कहा जाता है। तीन लोक के स्वामी का तात्पर्य है 'तीनों लोकों में रहने वाले समस्त प्राणियों को अभयदान देने वाले।' दूसरे रूप में कहा जाए तो उन्होंने तीनों लोकों को अपने ज्ञान का विषय बना लिया। एक अर्थ यह भी है कि त्रिलोक की संज्ञा से अभिहित मानव शरीर में रहने वाली आत्मा को जानने वाले 'त्रिलोकीनाथ' कहलाते हैं। तात्पर्य यह है कि मानव शरीर को 'त्रिलोक' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। उसमें रहने वाली आत्मा को जिन्होंने जान लिया, आत्मा के प्रत्येक प्रदेश को जिन्होंने देख लिया, जो आत्मा के पूर्ण रूप से नाथ हो गए हैं, वे त्रिलोकीनाथ कहे जाते हैं। चूँकि शरीर रूपी 'त्रिलोक' में आत्मा का निवास है, इसलिए उसका नाथ बनना तीनों लोकों का नाथ बनना है।

11 मई, 1992 (भीनासर)

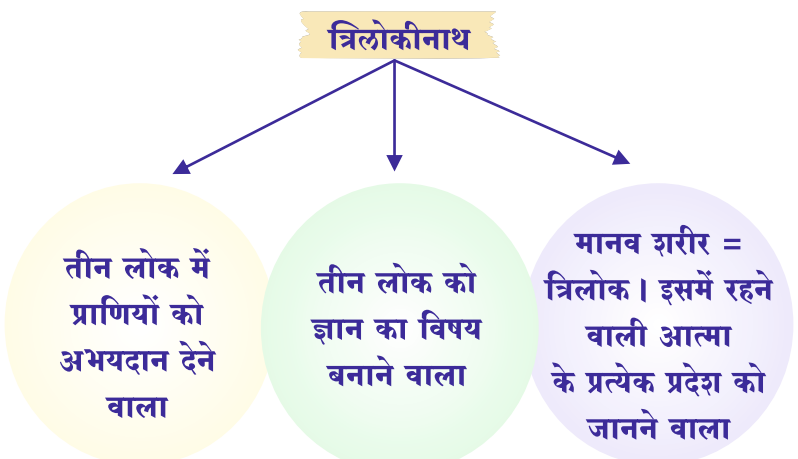
त्रिलोकीनाथ
तीन लोक में प्राणियों को अभयदान देने वाला
तीन लोक को ज्ञान का विषय बनाने वाला
मानव शरीर = त्रिलोक। इसमें रहने वाली आत्मा के प्रत्येक प्रदेश को जानने वाला

41

स्वर्ण से कुंदन

संघर्ष व समस्याएँ व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। संघर्ष व समस्याओं से घबराओ मत, उनसे जूझना सीखो। संघर्ष व समस्याएँ अनुभव का पिटारा हैं। इनसे जो अनुभव प्राप्त होते हैं, वे पुस्तकों में लभ्य नहीं हैं।

आग के संयोग बिना स्वर्ण, कुंदन नहीं होता। वैसे ही संघर्ष व समस्याओं में जीए बिना व्यक्तित्व में निखार नहीं आता।

13 मई, 1992 (भीनासर)

स्वर्ण से कुन्दन

संघर्ष, समस्याएँ = अनुभव का पिटारा

↓

पुस्तकों में अलभ्य

आग

↓

स्वर्ण → कुंदन = व्यक्तित्व

समस्या

↓

निखार

42

तत्काल निर्णय?

परिस्थितियाँ अनुकूल हों चाहे प्रतिकूल, व्यक्ति को सँभलकर रहना चाहिए। आज की अनुकूल परिस्थितियाँ कल प्रतिकूल रूप धारण कर सकती हैं। वहीं प्रतिकूल लगने वाली अवस्थाएँ, परिस्थितियाँ समय पाकर अनुकूल भी हो सकती हैं। अत: परिस्थिति के आधार पर व्यक्ति को तत्काल निर्णायक मानस नहीं बनाना चाहिए, बल्कि परिस्थितियों का धैर्य व तटस्थ भाव से अध्ययन करते रहना चाहिए।

1 जून, 1992 (भीनासर)

तत्काल निर्णय?

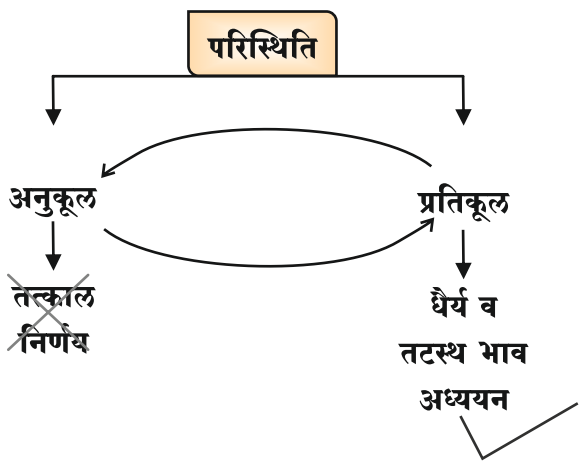

43

तीन बातें काम की

1. कभी-कभी बड़बोला (अधिक बोलने वाला) व्यक्ति जितना घातक नहीं होता, उतना मौन, कम बोलने वाला व्यक्ति घातक सिद्ध हो जाता है।
2. जीवन में आने वाले उतार-चढ़ाव को देखकर घबराओ मत, बल्कि इन अवस्थाओं को विकास का माध्यम/कारण/हेतु बनाकर अपने जीवन को कुंदन बना डालो।
3. जीवन के हर मोड़ पर मुस्कुराते रहो, तुम्हें कोई पराजित नहीं कर सकता। एक क्षण की गमगीन अवस्था भी तुम्हारे श्रेष्ठ जीवन की मौत का कारण बन सकती है।

1 जून, 1992 (भीनासर)

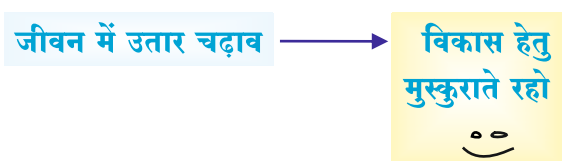
जीवन में उतार चढ़ाव
विकास हेतु
मुस्कुराते रहो

44

वंदना

वंदना जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है। वंदना के समय यह विवेक अनिवार्य है कि वंदना किसे, कब, कैसे की जानी चाहिए।

वंदना से जीवन में आमूलचूल परिवर्तन संभव है। हमारी साधना-धर्माराधना का प्रथम सूत्र ही वंदना है। प्रत्येक धर्मानुष्ठान का प्रारम्भ नमस्कार मंत्र या तिक्खुत्तो रूप वंदना सूत्रों से होता है।

8 जून, 1992 (भीनासर)

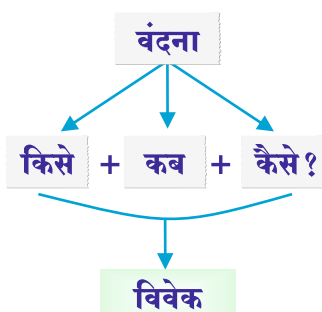
वंदना
किसे
+
कब
+
कैसे?
विवेक

45

महत्त्व का क्षण

सशक्त योद्धा युद्ध क्षेत्र में पीठ नहीं दिखाता। वह मोर्चा सँभाले रहता है। विजयश्री को वरण करने हेतु उसका पुरुषार्थ जारी रहता है। उसी तरह मानसिक वृत्तियों के उद्वेग क्षणों में साधक को दृढ़ संकल्पपूर्वक मोर्चा सँभाले रहना चाहिए। उस समय का क्षणिक प्रमाद आत्मा के लिए भयंकर सिद्ध हो सकता है। क्योंकि एक बार की हार व्यक्ति के मनोबल को क्षीण कर देती है। पुन: मोर्चा सँभालने जैसा मनोबल जुटाने में कितना ही समय लग सकता है। बिना मनोबल के मोर्चा सँभाल पाना असंभव है। अत: मानसिक उद्वेग के क्षण में सतत जागृत रहें। जैसे आपत्ति के समय में सेना तैयारी में रहती है। इस प्रकार की जागृत अवस्था व दृढ़ संकल्प से व्यक्ति भयंकर से भयंकर मानसिक उद्वेग के क्षणों में विजयी हो सकता है। एक बार विजयश्री प्राप्त कर लेने पर मन पहले से ही सुदृढ़ हो जाता है। उसमें अद्‌भुत क्षमता जागृत होती है, जिसकी यकायक कल्पना भी नहीं की जा सकती, किंतु उसके लिए ज्ञानीजनों का अनुभव है कि सदा अप्रमत्त रहो। तभी आपत्ति के क्षण को जाना जा सकता है। अन्यथा वह क्षण कब उपस्थित हो जाय, कहा नहीं जा सकता।

13 जून, 1992 (भीनासर)

महत्त्व का क्षण

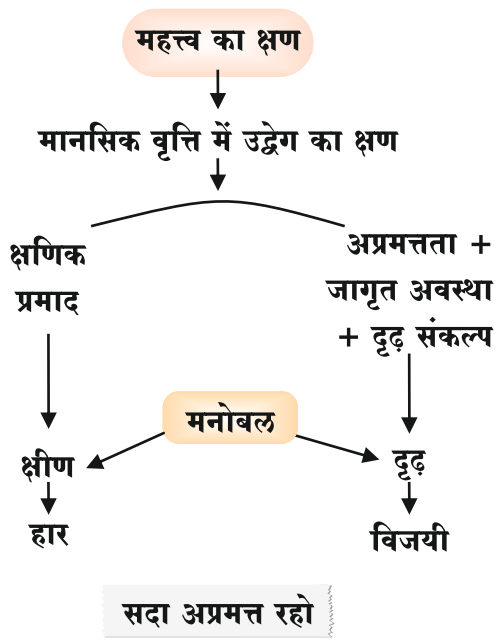

सदा अप्रमत्त रहो

46

वृत्तियों का तांडव नृत्य

आत्मा की अशुभ वृत्तियाँ भी सहसा पल्लवित नहीं होती, बल्कि संस्कार जमते-जमते उनका फैलाव होता है। जैसे किसी भी अपराध को करते हुए अपराधी प्रारम्भ में घबराता हुआ, डरता हुआ उसमें प्रवृत्त होता है, किंतु जब उसमें वह सफल हो जाता है तो उसका साहस बढ़ जाता है। इस प्रकार वह एक दिन कुख्यात अपराधी की श्रेणी तक पहुँच जाता है। वैसे ही आत्मा की अशुभ वृत्तियाँ भी धीरे-धीरे पनपती हुई इस कदर अपना फैलाव कर लेती हैं कि आत्मा का विवेक लुप्तप्राय: हो जाता है। उस दशा में अन्तर् का प्रकाश मंद हो जाता है। रह जाता है केवल वृत्तियों का तांडव नृत्य। अत: अशुभ वृत्तियों का जमाव बढ़ने के पूर्व ही व्यक्ति को सजग हो जाना चाहिए। केवल सजग ही नहीं, अपितु अशुभ वृत्तियों के परिहारपूर्वक सद्वृत्तियों के पौधे लगाने प्रारम्भ कर देना चाहिए, ताकि उनके द्वारा शुद्ध स्वच्छ ऑक्सीजन रूप वायुमण्डल तैयार हो सके और आत्मा का विवेक-दीप प्रज्वलित होकर आत्मा को आलोकित कर सके।

20 जुलाई, 1992 (उदयरामसर)

वृत्तियों का तांडव नृत्य

47

दो बिंदु चिंतन के

- अपराध-वृत्ति पनपने के पहले ही अन्तर् की आवाज पर ध्यान देना बुद्धिमत्ता है।
- धार्मिक अनुष्ठानों का हमारे जीवन व्यवहारों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, इसका सूक्ष्मता से निरीक्षण, परीक्षण, समीक्षण होना आवश्यक है।

20 जुलाई, 1992 (उदयरामसर)

दो बिंदु चिंतन के

बुद्धिमत्ता ⟶ अंतर आवाज पर ध्यान

धार्मिक अनुष्ठान → जीवन पर प्रभाव → सूक्ष्मता से निरीक्षण आवश्यक

48 आत्मज्योति प्रकट करने का उपाय

यह प्राय: देखा जाता है कि जिस कृत्य से हानि की संभावना ज्ञात हो जाय, उस कार्य को करने में प्रज्ञावान् पुरुष, विचारवान् पुरुष सहसा उद्यमशील नहीं होते, वरन् जिस कार्य से लाभ की संभावना परिज्ञात होती है, उसी में प्रवृत्त होते हैं, किंतु अध्यात्म के क्षेत्र में ऐसा बहुत कम देखा जाता है। व्यक्ति को जानकारी हो जाए कि अमुक कार्य उसे संसार में परिभ्रमण कराने वाले हैं, तो भी व्यक्ति उसमें प्रवृत्ति करता रहता है। ऐसा क्यों?

इसका कारण यह हो सकता है कि उसने जो जानकारी की है वह केवल पोथी का ज्ञान या मस्तिष्क का रटा-रटाया ज्ञान हो। वास्तव में यदि अन्तर् ज्ञान हो जाए तो व्यक्ति संसार परिभ्रमण जैसे आत्मा के लिए हानिकारक कार्य में प्रवृत्त हो नहीं सकता है। अत: जो ज्ञान पोथी या अन्य माध्यम से मस्तिष्क में जमाया गया है, उसे अनुभूति का विषय बनाकर आत्मज्योति प्रकट करनी चाहिए।

21 जुलाई, 1992 (उदयरामसर)

48 आत्मज्योति प्रकट करने का उपाय

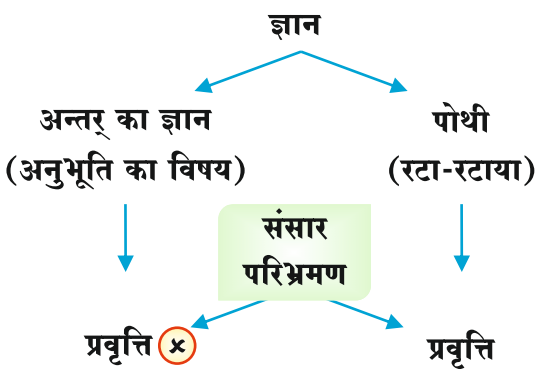

49

एक अवनत, दूसरा उन्नत

आत्मा की उन्नत अवस्था प्राप्त करने के लिए अहं को अवनत करना आवश्यक है। जब तक अहं उन्नत अवस्था में बना रहता है, तब तक आत्मिक शक्तियाँ अवनत रहती हैं। इसलिए साधनाशील आत्माओं को अपने मानापमान की परवाह नहीं करनी चाहिए, बल्कि उसके लिए स्वयं के मान का उत्सर्ग कर देना, उसे नमा देना उचित है। उसे यह विचार भी नहीं करना चाहिए कि उसे कोई सम्मान दे रहा है या नहीं, क्योंकि सम्मान चाहने से सम्मान प्राप्त होना संभव नहीं है। व्यक्ति का कर्तृत्व ही उसे सम्मान प्राप्त करवाता है। उस अवस्था में सम्मान की चाह समाप्त हो जाती है। उसका एक मात्र लक्ष्य होता है, आत्मा को उन्नत अवस्था प्राप्त करवाना। अत: एक को अवनत करने से दूसरा उन्नत होता है।

25 जुलाई, 1992 (उदयरामसर)

49 एक अवनत, दूसरा उन्नत

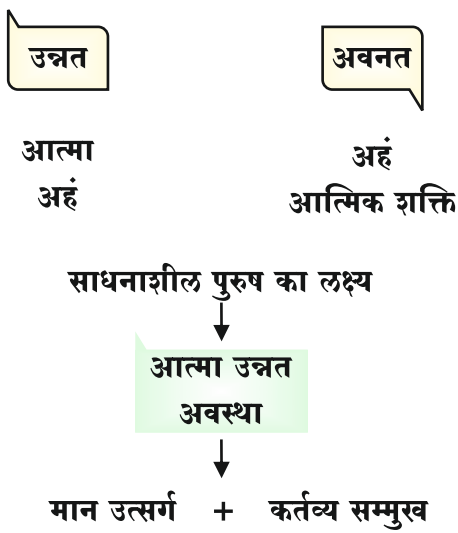

50

जहा अंतो, तहा बाहिं

आज के धार्मिक वातावरण को देखकर एक टीस पैदा होती है। उसका कारण है धर्म क्षेत्र में 'अनुगमन' की प्रवृत्ति। अनुगमन बुरा नहीं है, किंतु जिस अनुगमन में स्वयं की चेतना का कोई अस्तित्व न हो, उसका कोई जागृत क्षण नहीं हो, केवल बाह्य अनुष्ठानों में ही धर्म की इतिश्री मानी जा रही हो, उस अनुष्ठान की 'आत्मा' को पूर्णतया भुला दिया गया हो, ऐसा अनुगमन/अनुकरण यथार्थ को कैसे प्राप्त करवा सकता है।

उक्त स्थिति का गहराई से अनुचिंतन करने पर स्थिति बड़ी भयावह दृष्टिगत होती है। धार्मिक अनुष्ठान भी भीतर तामसिक वृत्तियों का संरक्षक बनते नजर आ रहे हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को बहुत सोच समझकर कदम आगे बढ़ाना चाहिए। उसे 'जहा अंतो, तहा बाहिं' के आदर्श के अनुरूप जीवन जीना चाहिए।

28 जुलाई, 1992 (उदयरामसर)

जहा अंतो
तहा बाहिं

51

स्वयं को उपशमित करें

एक रोग से आक्रान्त व्यक्ति आयुर्वेदिक वैद्य के पास गया तो उसने वात-पित्त-कफ सम्बन्धी दोष बताया। वही रोगी एलोपैथिक चिकित्सक के पास पहुँचा तो बी.पी. इन्स्ट्रूमेंट्स व स्टेथोस्कोप आदि से जाँच कर बी.पी. की बीमारी बताई। होमियोपैथी का चिकित्सक उसकी हिस्ट्री सुनकर दवा देता है तो भोपा किसी व्यन्तर की छाया का दोष बताता है। वहीं ज्योतिषी ग्रह व नक्षत्र आदि का प्रकोप निरूपित करते हैं। एक ही रोगी अलग-अलग चिकित्सकों द्वारा भिन्न-भिन्न रोग से स्वयं को ग्रस्त पाता है।

ऐसी स्थिति में ज्ञानीजन कहते हैं कि मूल बीमारी कर्मों की है। जब तक असातावेदनीय का प्रबल उदय भाव बना रहता है, तब तक उसे असाता का वेदन करना पड़ता है। अत: रोग उपशमन के बजाय स्वकृत कर्मों का परिपाक जानकर स्वयं को उपशमित करना चाहिए।

29 जुलाई, 1992 (उदयरामसर)

स्वयं को उपशमित करें

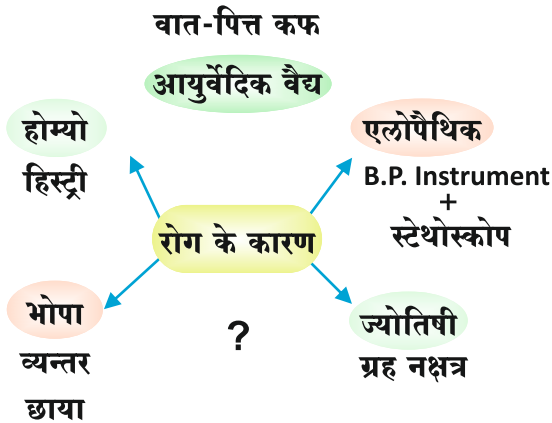

52 शक्ति केंद्रों का उपयोग

एक व्यापारी को राजा ने चंदन का बगीचा दे सम्मानित किया। व्यापारी सोचने लगा कि बगीचा हमारे किस काम का! हम तो व्यापारी हैं। मुझे तो इससे धन लाभ प्राप्त करना चाहिए। वह लाभ की धुन में चंदन के वृक्षों को कोयला बना-बनाकर विक्रय करने लगा। बहुत सारा चंदन उसने कोयला बनाकर नष्ट कर दिया। कहीं यही दशा आज के मानव की तो नहीं है! उसे पाँचों इन्द्रियाँ प्राप्त हुई हैं, मन-वचन-काया की शक्ति भी प्राप्त हई है। इस शरीर में ऐसे-ऐसे शक्ति केन्द्र प्राप्त हुए हैं, जिन्हें जागृत कर वह भव-भव के दारिद्र्य को दूर कर अक्षय धनराशि प्राप्त कर सकता है, किंतु वह प्राप्त शक्ति केंद्रों का उपयोग नाकुछ भौतिक पदार्थों के लिए कर रहा है। इसे चन्दन का कोयला बनाने तुल्य नहीं तो और क्या कहा जा सकता है! मानव को अपनी शक्ति का अहसास करना चाहिए।

30 जुलाई 1992 (उदयरामसर)

शक्ति केंद्रों का उपयोग

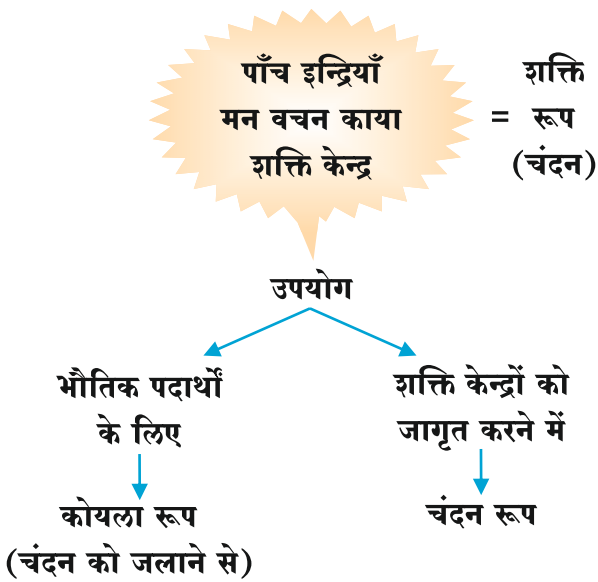

53

सद्‌गुणी जीवन की भोर

व्यक्ति की मनोवृत्ति का अध्ययन करने पर तो लगता है कि व्यक्ति पाप करने से नहीं डरता। वह पाप करने की प्रवृत्ति को छोड़ नहीं पाता, किंतु परिवार-समाज उसे पापी नहीं समझे, इसका प्रयत्न अवश्य करता है। परिवार-समाज के बीच अपनी छवि ऐसी रखना चाहता है कि वह धर्मात्मा है, सद्‌गुणी है। यह एक प्रकार का स्वयं का स्वयं के प्रति छलावा है, दंभ है। जो स्वयं को छल सकता है, वह दूसरों को छलने से पीछे नहीं हट सकता अर्थात् वह दूसरों को भी छलने वाला होता है। स्वयं को छलने की मनोवृत्ति को ही सर्वप्रथम संशोधित करना आवश्यक है। ऐसा होने पर सद्‌गुण रूपी जीवन की भोर होगी।

22 अगस्त, 1992 (उदयरामसर)

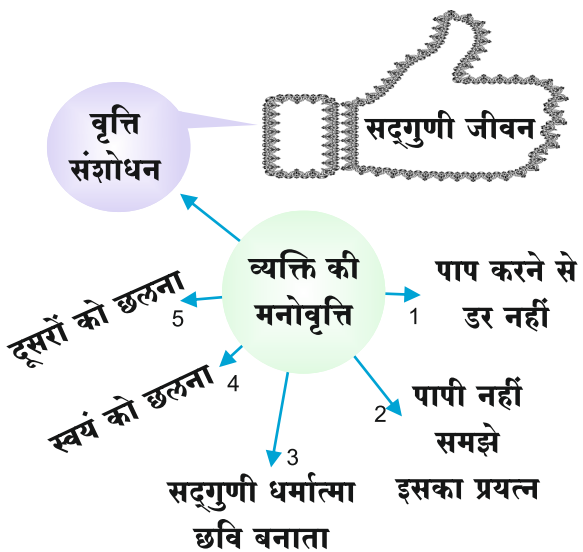
वृत्ति संशोधन
सद्‌गुणी जीवन
व्यक्ति की मनोवृत्ति
1
पाप करने से डर नहीं
2
पापी नहीं समझे इसका प्रयत्न
3
सद्‌गुणी धर्मात्मा छवि बनाता
4
स्वयं को छलना
5
दूसरों को छलना

54 जीवन की समग्रता का ज्ञान

क्रोध, दंभ, ईर्ष्या, डाह आदि आत्म शत्रु आत्मा के सहारे ही टिके हुए हैं। वे तब तक आत्मा का साथ निभाते हैं, जब तक आत्मा जीवन-दर्शन को प्राप्त नहीं कर लेती।

जीवन-दर्शन से तात्पर्य जीवन की समग्रता का ज्ञान है। उससे व्यक्ति में एक अलौकिक शक्ति का जागरण होता है। उस शक्ति का केन्द्र भी आत्मा ही है, किंतु उसका जागरण जीवन दर्शन के क्षणों में ही हो पाता है। उसके जागरण से आत्म शत्रु स्वयं को कमजोर महसूस करने लगते हैं। वे छिपना चाहते हैं, किंतु जागृत शक्ति केन्द्र से प्रवाहित शक्ति से वे अनावृत होते जाते हैं। अंततोगत्वा उन्हें अपना आसन समेटना पड़ता है, क्योंकि प्रकाश व अंधकार एक साथ नहीं रह पाते।

22 अगस्त, 1992 (उदयरामसर)

जीवन की समग्रता का ज्ञान

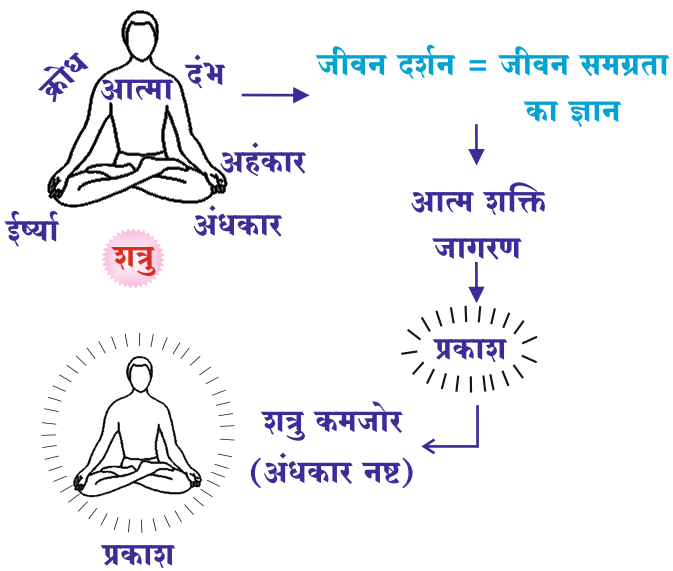

55

ऊर्जा का उपयोग

तपस्या से शरीर का तेज सक्रिय होता है, जिससे उसमें विद्युत तरंगें प्रवाहित होने लगती हैं, जो एक प्रकार की ऊर्जा है। उस ऊर्जा का सम्यक् नियोजन किया जाय तो वह कर्म क्षय की प्रक्रिया का प्रमुख अंग बन जाती है। यदि उसका सम्यक् नियोजन नहीं किया गया तो बरसाती नदी की तरह तटबंधों को तोड़कर बाढ़ का रूप ले सकती है, जो विध्वंसकारी हो सकता है। उसका वह प्रकटीकरण क्रोध, अहंकार आदि के रूप में होता है। उसी प्रादुर्भूत ऊर्जा को यदि सम्यक्त्या आत्मशुद्धि की प्रक्रिया में लगाया जाए तो जैसे विद्युत का विनियोजन होने पर वह मानव के लिए उपयोगी सिद्ध होती है, उसी प्रकार उस ऊर्जा से अनेक ग्रंथियाँ विमोचित होंगी। फलस्वरूप चैतन्य केंद्रों को जागृत करते हुए वह ऊर्जा कर्म-कल्मश को आत्मा से अलग कर आत्मा को निर्मल आलोक प्रदान करेगी।

31 अगस्त, 1992 (भीनासर)

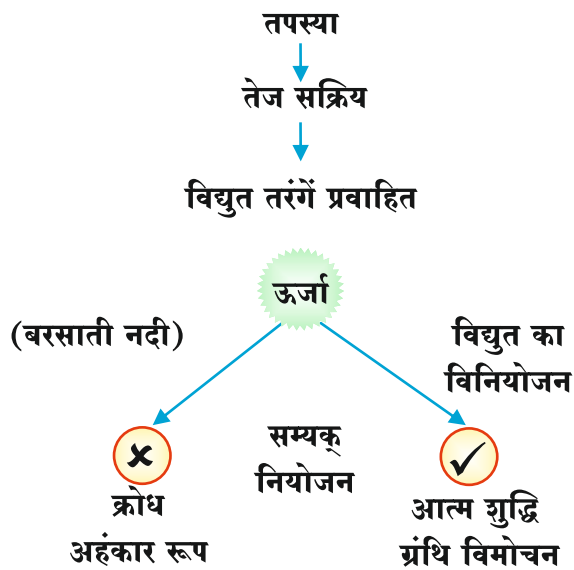
तपस्या
तेज सक्रिय
विद्युत तरंगें प्रवाहित
ऊर्जा
(बरसाती नदी)
विद्युत का
विनियोजन
सम्यक्
नियोजन
क्रोध
अहंकार रूप
आत्म शुद्धि
ग्रंथि विमोचन

56 स्वभाव, विभाव और चारित्र चक्र

भरत चक्रवर्ती का चक्ररत्न आयुधशाला में तब तक प्रविष्ट नहीं हुआ, जब तक उनके सहोदर भ्रातागण स्वतंत्र थे। प्रभु के उपदेश से अठानवे सहोदर भ्राता दीक्षित हो गये, लेकिन बाहुबलि जी ने अधीनता स्वीकार नहीं की। भरत जी अपने भाई के साथ युद्ध करना नहीं चाहते थे, किंतु चक्रवर्ती के लिए सबको अधीन करना आवश्यक होने से उन्हें भाई के साथ युद्ध करना पड़ा। सहोदर भाई पर विजय प्राप्त होते ही चक्र आयुधशाला में प्रविष्ट हो गया।

हमारी आत्मा में आत्म गुण रूप स्वभाव व कषायादि रूप विभाव दोनों सहोदर के रूप में रहे हुए हैं। कर्मों की जकड़ के कारण स्वभाव अपने विभाव रूपी भाई से युद्ध करना नहीं चाहता। विवेक रूपी देव के संबोधन से विभाव से युद्ध किया जाता है। जैसे ही विभाव हटता है, स्वभाव का आधिपत्य हो जाता है। चारित्र रूपी चक्र आत्मस्थ हो जाता है, जो कषाय-आत्मा, योग आत्मा के केन्द्रों को परिमार्जित करता हुआ शुद्ध-विशुद्ध द्रव्य आत्मा के रूप में अभिव्यक्त होता है।

31 अगस्त, 1992 (उदयरामसर)

56 स्वभाव, विभाव और चारित्र चक्र

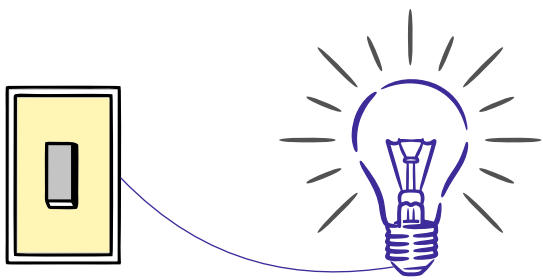

= एक्यूप्रेशर पद्धति

57 प्रकटित ज्ञान और संगृहीत ज्ञान

एक दवा की शीशी पर फार्मूला अंकित है। एक व्यक्ति उसे पढ़कर ज्ञान करता है। दूसरा व्यक्ति दवा का निर्माण करने वाला है। उसने रसायनों (Chemicals) का प्रयोग करके दवा तैयार की है। दोनों को दवा का ज्ञान है, किंतु जिसने रसायनों का प्रयोग करके दवा का निर्माण किया है, उसका ज्ञान पूर्ण रूप से दृढ़ होता है, क्योंकि उसे उस पर पूरा भरोसा है, जबकि पहला व्यक्ति अपने ज्ञान पर पूर्णतया विश्वस्त नहीं हो पाता है। इसी प्रकार दर्शनपूर्वक जो ज्ञान होता है, वह हमारे में प्रकट होता है, जबकि फॉर्मूले से जो ज्ञान होता है, वह संगृहीत किया हुआ होता है। एक 'स्वयं' में होता है, जबकि दूसरा 'उसके पास' होता है। व्याकरण की दृष्टि से प्रथम प्रकार के ज्ञान वाला ज्ञानी सप्तमी विभक्ति का अधिकारी होता है, जबकि दूसरे प्रकार के ज्ञान वाला ज्ञानी षष्ठी विभक्ति का अधिकारी होता है। अत: दर्शनपूर्वक ज्ञान आत्मज्योति को प्रकट करने वाला होता है।

2 सितम्बर, 1992 (उदयरामसर)

57 प्रकटित ज्ञान और संगृहीत ज्ञान

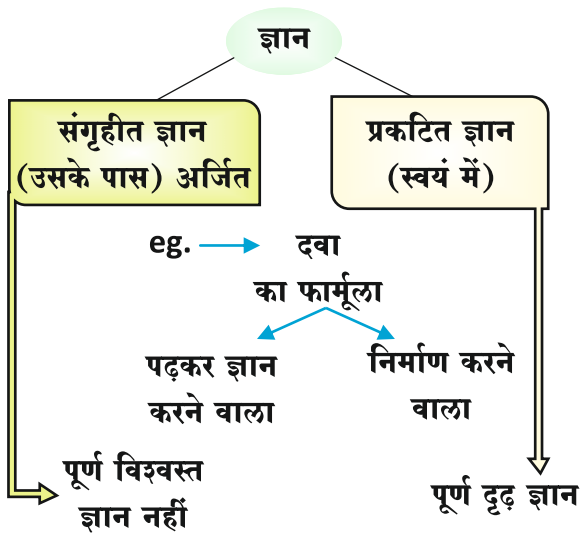

58 एक्यूप्रेशर पद्धति के सूत्र

एक्यूप्रेशर पद्धति का प्रारम्भ कब हुआ, कब से उसका प्रचलन हुआ, यह इतिहास का विषय है, किंतु प्राचीन जैन साहित्य पर जब अनुप्रेक्षा करते हैं तो लगता है कि उसमें एक्यूप्रेशर पद्धति के सूत्र मौजूद हैं। महाप्राण ध्यान साधना, समाधि आदि में पहुँचे हुए साधक को जब जागृत किया जाता था, पुन: जब उसे बाह्य परिवेश में उपस्थित करना होता था, तब उसके पैर का अंगुष्ठ दबाया जाता था। यह हम सुनते आए हैं, पर जब सोचते हैं कि पैर का अंगुष्ठ क्यों दबाया जाता था, उसका ध्यान, साधना व समाधि के साथ क्या तअल्लुक (संबंध) है तो जानकारी होती है कि इसी चिंतन में एक्यूप्रेशर का सूत्र छिपा हुआ है। इडा-पिंगला का मेल अंगूठे में रहा हुआ है। पिनियल ग्रंथि (Pineal Gland) का स्विच (Switch) अंगूठे में है। हमारे ध्यान साधना के कई केन्द्रों के स्विच अंगूठे में रहे हुए हैं।

व्यक्ति विचार कर सकता है कि यह क्या है, यह कैसे हो सकता है, किंतु अनहोना नहीं है। आज भी देखा जाता है कि बल्ब कहीं होता है, जबकि स्विच कहीं और। स्विच काफी दूरी पर होते हुए भी उस बल्ब को जला देता है, बुझा देता है। यह अवस्था हमारे अंगूठों में भी है। इसी प्रकार शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों के भिन्न-भिन्न स्विच हैं। उनके अनुसंधान का परिणाम एक्यूप्रेशर पद्धति है। यह हमारे शरीर और साधना से जुड़ी हुई पद्धति है।

5 सितम्बर, 1992 (उदयरामसर)

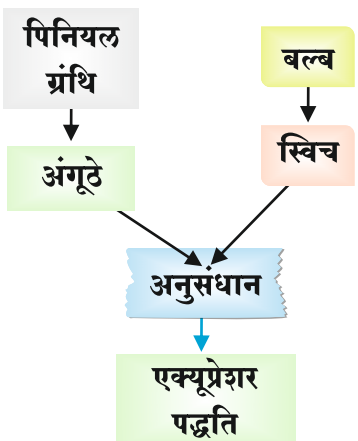
पिनियल ग्रंथि
अंगूठे
बल्ब
स्विच
अनुसंधान
एक्यूप्रेशर पद्धति

59

स्वयं की तुलना करो

सावधान! सत्ता की प्राप्ति हुई तो सोचो, उसके माध्यम से सेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ है। इसके विपरीत यदि कर्णप्रिय प्रशंसा के बीच उलझ गये तो वह जीवन के लिए घातक स्थिति पैदा कर सकती है।

प्रशंसा करने वाले मना करने से रुक नहीं पाते हैं। अत: जब-जब प्रशंसा के शब्द कर्णगोचर हों, उस समय तुलना करते रहो कि जो कहा जा रहा है, वैसी मेरी स्थिति है या नहीं? यदि नहीं है तो उससे प्रेरणा यह लेनी चाहिए कि अपनी कमजोरियों को निकालकर मैं यथास्वरूप को प्राप्त करूँ। इससे आत्मा को संबल मिलता है तथा प्रशंसा के चक्रव्यूह में फँस नहीं सकता।

10 अक्टूबर, 1992 (उदयरामसर)

स्वयं की तुलना करो

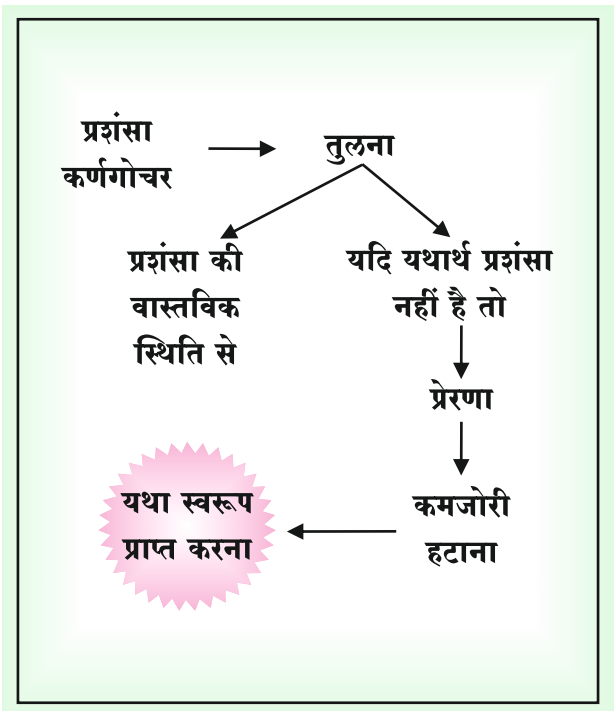
प्रशंसा
कर्णगोचर
तुलना
प्रशंसा की
वास्तविक
स्थिति से
यदि यथार्थ प्रशंसा
नहीं है तो
प्रेरणा
कमजोरी
हटाना
यथा स्वरूप
प्राप्त करना

60

तूफान के क्षण

वासना एक प्रकार का आवेग है, तूफान है। जिस समय व्यक्ति में उसका ज्वार आता है, उसकी हरकतें पशुतुल्य हो जाती हैं। जैसे पशु अपनी विषय की पूर्ति के लिए तदनुकूल के पीछे भागता है, उसी प्रकार व्यक्ति भी अपने अस्तित्व को, गौरव, गरिमा को भुलाकर बहकने लगता है। मद में बेहोश हो जाता है। ऐसे क्षणों में जो स्वयं को सँभाल लेता है, वह महान् पुरुष बन जाता है। तूफान को समर्पित पदार्थों की क्या दशा होती है, यह सुविदित है। वैसी ही दशा विषय के आवेग में, तूफान में बहने वाले मानव की बनती है। उसका पतन किस हद तक होगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसलिए तूफान के क्षणों में संभलकर रहो।

11 अक्टूबर, 1992 (उदयरामसर)

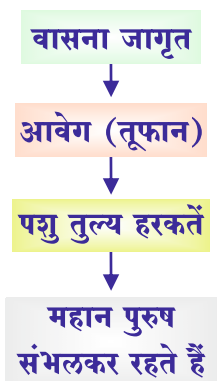
वासना जागृत
आवेग (तूफान)
पशु तुल्य हरकतें
महान पुरुष
संभलकर रहते हैं

61

आग में घी की आहुति

कई व्यक्ति अग्नि को उद्दीप्त करने के लिए उसमें घी डालते हैं। ऐसा करने वाले व्यक्तियों का उद्देश्य जो भी हो, किंतु जब चिंतन करता हूँ तो उसका दूसरा पक्ष भी उभर कर सामने आता है कि व्यक्ति कषाय रूपी अग्नि में आत्मा रूपी घी की आहुति देकर मस्त हो रहा है। वह यह नहीं सोचता कि इससे उसकी आत्मा की क्या दशा बनने वाली है। वह सोचे भी कैसे, क्योंकि उसकी आत्मा पर अज्ञान, अंधकार का पर्दा जो पड़ा हुआ है।

16 अक्टूबर, 1992 (उदयरामसर)

आग में घी की आहुति

62

'स्वस्थ' होना आवश्यक

सफल जीवन के लिए व्यक्ति का स्वस्थ होना आवश्यक है। स्वस्थता में जो आहार ग्रहण किया जाता है, उसका पाचन होकर यथोचित रस तैयार होता है। वह रस भीतरी रासायनिक प्रक्रिया से सप्त धातु रूप परिणत होता है, जो शरीर को संपुष्ट करती है। बीमारी की हालत में ग्रहण किए हुए आहार का सम्यक् पाचन नहीं होता, फलस्वरूप धातुएँ भी सबल नहीं होती। व्यक्ति कितना ही खाता रहे, वह निर्बल ही बना रहता है। इसी प्रकार आत्मा जब तक मिथ्यात्व रूपी रोग से पीड़ित होती है, तब तक वह संपुष्ट नहीं हो पाती। वह जो भी ग्रहण करती है उसका परिणमन सही नहीं होता, जिससे उसे जो सफलता मिलनी चाहिए वह प्राप्त नहीं हो पाती। अत: आत्मा का मिथ्यात्व रूपी रोग हटाकर उसे स्वस्थ बनाया जाय। उसके स्वस्थ हो जाने पर उसकी जो भी क्रिया होगी, उसका परिणमन सही होगा, जिससे वह जीवन की सफलता के चरम छोर 'मोक्ष' को प्राप्त कर सकती है।

16 अक्टूबर, 1992 (उदयरामसर)

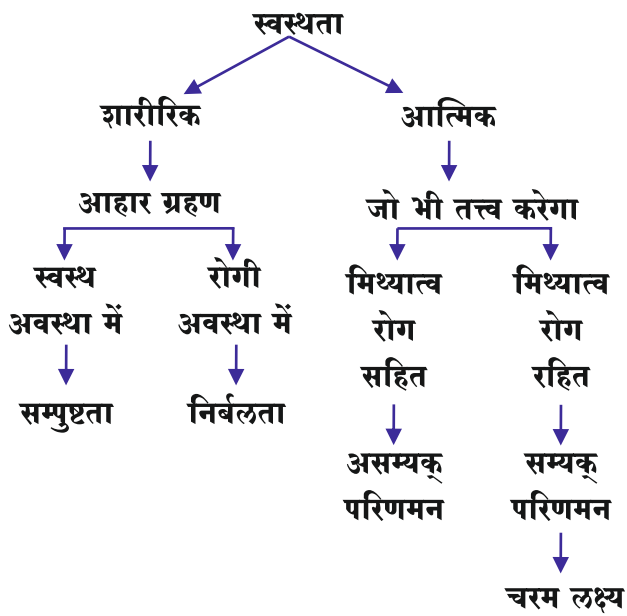
स्वस्थता
शारीरिक
आत्मिक
आहार ग्रहण
जो भी तत्त्व करेगा
स्वस्थ अवस्था में
रोगी अवस्था में
मिथ्यात्व रोग सहित
मिथ्यात्व रोग रहित
सम्पुष्टता
निर्बलता
असम्यक् परिणमन
सम्यक् परिणमन
चरम लक्ष्य

63

बाहर की रौनक

कपूर की टिकिया अधिक देर तक नहीं रहती। वह उड़ जाती है। संसार के पदार्थों पर जब चिंतन किया जाता है तो वे भी क्षणिक ही प्रतीत होते हैं। कोई भी तो पदार्थ स्थायी टिकते नजर नहीं आते। जैसे हल्दी का रंग धूप में उड़ जाता है, वैसे ही ये सारे भौतिक पदार्थ क्षणभंगुर हैं। और तो क्या जिस शरीर को आत्मा ने ग्रहण कर रखा है, वह भी तो टिकाऊ नहीं है। वह भी नष्ट हो जाता है। अत: हे चेतन! इनमें क्यों भटक रहा है, क्यों अटक रहा है! तुम्हारा स्वरूप इससे भिन्न है, उसे सँभाल। उसे यदि सँभाल लिया तो बाहर की सारी रौनक स्वत: फीकी लगने लगेगी।

16 अक्टूबर, 1992 (उदयरामसर)

बाह्य रौनक

हे चेतन! भटकना छोड़!!
स्वयं को संभाल!!

64

शिष्य के दो रूप

शिष्य के दो रूप हैं। एक पानी का रूप, दूसरा घी का रूप। पानी के तुल्य शिष्य अपने दुग्ध रूपी गुरु के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है। वह जल सकता है, पर गुरु से विलग नहीं रह सकता। गुरु का सामीप्य मिलने के पश्चात् उसकी गति, मति, जीवन केवल गुरु होता है। वहाँ अनहद गूँजता है-

अब सौंप दिया इस जीवन को,
गुरुदेव तुम्हारे हाथों में, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में...

वहाँ कोई शिकायत नहीं, कोई तर्क नहीं, वितर्क नहीं, किंतु घी के समान शिष्य अपना प्रदर्शन चाहता है। वह दूध रूपी गुरु पर छाया रहता है। गुरु में सिमटने के बजाय गुरु को स्वयं में सिमटाने का प्रयत्न करता रहता है। वह ऊपर-ऊपर रह जाता है। वह केवल प्रदर्शन में स्वयं को रख लेता है, पर गुरु का तादात्म्य उसे प्राप्त नहीं होता। यद्यपि उसकी निष्पत्ति दूध रूपी गुरु से है, तथापि उसे वह भूल जाता है।

1 नवम्बर, 1992 (उदयरामसर)

शिष्य के दो रूप

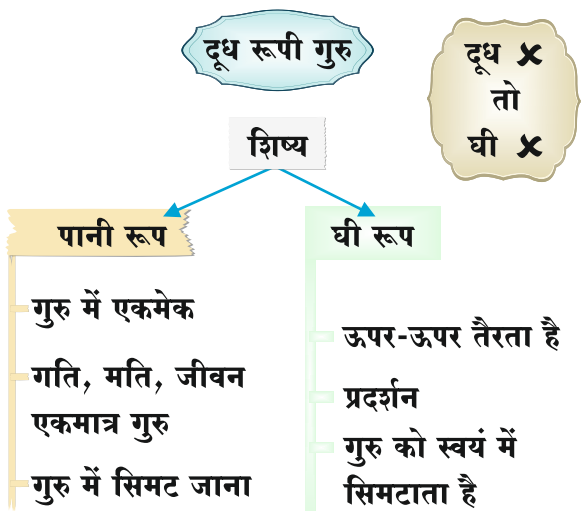

जबकि दूध से घी की निष्पत्ति होती है।

65 दर्शन और व्यवहार का समन्वय

जीवन का एक पहलू दर्शन रूप होता है व दूसरा पहलू व्यवहार रूप। दर्शन सिद्धान्त हुआ करता है, जो अपने भीतर आदर्श को समाये रहता है। व्यवहार, आचार रूप होता है। इन दोनों का समन्वित रूप (सम्मिलित अवस्था) जीवन की श्रेष्ठता को अंकित करता है। दर्शन और व्यवहार में जब तक दूरी रहती है, व्यक्ति जीवन के यथार्थ रहस्य को प्राप्त नहीं कर पाता।

जहाँ जीवन की समग्रता प्रकट होती है, वहाँ दर्शन और व्यवहार एकाकार हो जाते हैं। दोनों का तादात्म्य स्थापित हो जाता है। वहाँ जीवन स्वयं दर्शन रूप बन जाता है। जो दूसरों का आदर्श बन जाता है। अत: जीवन के दोनों छोरों को एक बनाकर उसके यथार्थ को प्राप्त करने में हमारा भव्य पुरुषार्थ जागृत हो।

3 नवम्बर, 1992 (उदयरामसर)

65 दर्शन और व्यवहार का समन्वय

जीवन की समग्रता	=	दर्शन (सिद्धान्त रूप)	+	व्यवहार (आचार रूप)